एकांकी सप्तक

एकांकी सप्तक

[सात श्रेष्ठ एकांकी]

सम्पादक

सुरेन्द्रपाल, एम० ए०

किताब महल (हो० डि०) प्रा० लिमिटेड

५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद

प्रकाशक
किताब महल (हो० डि०) प्रा० लि०
५६ ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

*

प्रथम संस्करण
१८८४ शकाब्द

मुद्रक
केसरवानी प्रेस,
मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

*

आवरण-सज्जा
सोना घोषाल, रंगोली, प्रयाग

एकांकी सप्तक

अनुक्रम

प्रस्तावना

एकांकी का इतिहास

एकांकी एकदम नयी साहित्य-विधा है। हिन्दी के अन्य अनेक गद्य-रूपों की तरह पाश्चात्य-साहित्य के प्रभाव से ही एकांकी भी हमारे यहाँ आया। लेकिन आज से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व पश्चिम में भी कोई एकांकी का नाम तक न जानता था। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उससे पहले एकांकी-जैसी कोई चीज़ विद्यमान ही नहीं थी लेकिन उसे एक स्वतन्त्र साहित्य-विधा के रूप में मान्यता नही प्राप्त थी। जिस तरह आजकल चलचित्र-गृहों में चलचित्र आरम्भ होने के पूर्व कुछ देर तक भारत सरकार द्वारा निर्मित वृत्त-चित्र दिखाये जाते हैं इसी तरह इंग्लैंड के प्रेक्षा-गृहों में मुख्य नाटक आरम्भ होने के पूर्व हल्के किस्म के हास्य-विनोद से पूर्ण कोई छोटी-सी चीज़ प्रस्तुत की जाती थी। इसे 'कर्टेन रेज़र' अर्थात पट-उन्नायक कहते थे। इसका प्रचलन उन प्रेक्षकों के कारण हुआ, जो रात को देर से खाना खाने के कारण प्रेक्षा-गृह में विलम्ब से पहुँचते थे। ठीक समय पर नाटक आरम्भ कर देने से इन देर से आने वालों के कारण बीच में बड़ी असुविधा होती थी। इसलिए नाटक को निर्धारित समय से कुछ देर बाद आरम्भ किया जाता था और पर्दा उठने से पहले पट-उन्नायक द्वारा उपस्थित प्रेक्षको का मनोरंजन किया जाता था, जिससे वे ऊब कर चले न जायें।

पट-उन्नायक से आज के एकांकी का विकास एक अप्रत्याशित घटना के कारण हुआ। १६०३ की बात है—लंदन के वैस्ट एण्ड थियेटर में डब्ल्यू० डब्ल्यू० जैकब की कहानी 'बन्दर का पंजा' को पट-उन्नायक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था। उससे दर्शक इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे बिना नाटक देखे सन्तुष्ट होकर चले गये। प्रेक्षा-गृह के स्वामियों पर इसका अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और उन्होंने आर्थिक हानि की आशंका से घबरा कर पट-उन्नायक को प्रेक्षा-गृह

से निर्वासित कर दिया। इस प्रकार पट-उन्नायक की मृत्यु हो गयी, लेकिन इसी से एकांकी का जन्म भी हुआ। व्यावसायिक रंग-मंच से निर्वासित होकर पट-उन्नायक एकांकी की स्वतन्त्र विधा के रूप में जनता में आया और नगर-नगर गाँव-गाँव में लोकप्रिय होने लगा। इसके लिए न भारी-भरकम साज-सामान की आवश्यकता थी न कीमती वेश-भूषा की। सीधे-सादे रंग-मंच पर बिना किसी विशेष साज-सामान के यह बड़ी आसानी से खेला जा सकता था और भरपूर आनन्द प्रदान करता था। अब यह जनता की आकांक्षाओं तथा समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का मुख्य साधन बन गया और बड़ी तेजी से लोकप्रियता की मंज़िलें तय करने लगा। इस प्रकार इंग्लैंड में एकांकी नाटक ने मनोरंजन के साथ-साथ समाज-सुधार, जन-जागरण एवं शिक्षा-प्रसार का काम करके साहित्य में अपना एक सुदृढ़ स्थान बना लिया।

एकांकी का स्वरूप

एकांकी के स्वरूप के सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्तियाँ हैं। कुछ लोग इसे बड़े नाटक का संक्षिप्त रूप समझ बैठते हैं और कुछ लोग इसे कहानी का अभिनेय रूपान्तर मात्र मानते हैं। इसी तरह कुछ लोग कथात्मक सम्भाषण मात्र को एकांकी की संज्ञा दे देते हैं। जिस तरह कहानी को उपन्यास का संक्षिप्त रूप नहीं माना जाता उसी तरह एकांकी को भी बड़े नाटक का लघु संस्करण कहना उचित नहीं है। कहानी और उपन्यास की ही तरह एकांकी तथा बड़े नाटक भी दो स्वतन्त्र साहित्य-रूप हैं और दोनों की एक-दूसरे से भिन्न आवश्यकताएँ तथा विशेषताएँ हैं। यह सच है कि बहुत-सी कहानियों को वांछित परिवर्तन द्वारा एकांकी का रूप दिया जा सकता है और इसी प्रकार कुछ एकांकी कहानियों के रूप में परिवर्तित किये जा सकते हैं लेकिन हमेशा ऐसा कर पाना सम्भव नहीं है। अक्सर ऐसा होता है कि कहानी के रूप में कोई चीज़ बहुत सुन्दर रहती है लेकिन एकांकी के रूप में ढालने पर वह अच्छी नहीं बन पाती। यही बात किसी

अच्छे एकांकी के खराब कहानी बन जाने को है। वास्तव में कहानी तथा एकांकी की रचना में उद्देश्य की ऐसी भिन्नता है कि उन्हें सदा सफलतापूर्वक एक-दूसरे में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। कहानी पढ़ने के लिए लिखी जाती है और एकांकी रंग-मंच पर प्रस्तुत करने के लिए। कहानी में पाठकों के मनोरंजन का ध्यान रखा जाता है और एकांकी में प्रेक्षकों का। कहानी श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत आती है और एकांकी दृश्य काव्य के अन्तर्गत। कुछ ऐसे भी एकांकी होते हैं जो प्रेक्षकों के लिए नहीं केवल पाठकों के लिए लिखे जाते हैं लेकिन उन्हें एकांकी की संज्ञा देना उपयुक्त नहीं है। उनका ऊपरी ढांचा भले एकांकी का-सा हो लेकिन भीतरी ढांचा कहानी से मिलता-जुलता है। किसी सामान्य कहानी को रूपान्तरित करने पर ऐसे ही एकांकी बन पाते हैं, जो दृश्य न बन कर श्रव्य ही बने रहते हैं। सामान्य सम्भाषण को एकांकी कहना तो और भी भ्रामक है। एकांकी का अपना शिल्प तथा रूपाकार है और बिना उस कसौटी पर खरी उतरे किसी भी रचना को एकांकी नहीं कहा जा सकता।

एकांकी की कला बहुत कुछ कहानी की कला से साम्य रखती है लेकिन उतना ही जितना उपन्यास की कला में और बड़े नाटक की कला में है। प्रेम-चन्द्र ने उपन्यास को उद्यान की संज्ञा दी है और कहानी को गमले में सजे फूल के एक पौदे की। बड़े नाटक और एकांकी का अन्तर भी ठीक यही है। नाटक जहाँ एक विस्तृत जीवन-प्रवाह को उसकी विविधता तथा सम्पूर्णता में उपस्थित करता है वहाँ एकांकी उसके खण्ड-चित्र की झलक भर दिखाकर असम्पूर्णता से सम्पूर्णता का आभास कराता है। एकांकी का मुख्य गुण है संक्षिप्तता एवं एकात्मकता! संकलन-त्रय का महत्व बड़े नाटकों में भी स्वीकार किया जाता है लेकिन एकांकी के लिए तो यह अनिवार्य बन गया है। बड़े नाटकों में कार्य, स्थान तथा समय की एकात्मकता के बन्धन को थोड़ा ढीला किया जा सकता है लेकिन एकांकियों में नहीं। यही कारण है कि उत्कृष्ट एकांकियों में संकलन-त्रय का पूरा ध्यान रखा जाता है और उनमें एक ही सेट तथा एक ही दृश्य में पूरे कार्य व्यापार को उतने ही समय में प्रस्तुत किया जाता है जितने समय में सामान्य जीवन में वे

पूरे हो सकते हैं। एकांकी के वस्तु-चयन, सम्भाषण तथा दृश्य-विधान सभी में संक्षिप्तता, तीव्र गत्यात्मकता तथा एकात्मकता का विशेष ध्यान रखा जाता है। एकांकी-लेखन गागर में सागर भरने-जैसा कार्य है और इसमें वही सफल होते हैं जो इस कला की सूक्ष्मताओं को अच्छी तरह जानते हैं। एकांकी के आरंभ, विकास, चरम सीमा तथा अन्त में ऐसी क्षिप्रता, संक्षिप्तता तथा एकात्मकता होनी चाहिए जैसी किसी कुशल चित्रकार द्वारा ब्रश के एक-ही-दो स्ट्रोक द्वारा बनाये गये रेखाचित्र में होती है।

हिन्दी एकांकी का जन्म

जैसा कि पहले कहा जा चुका है—हिन्दी एकांकी पाश्चात्य साहित्य की देन है। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि भारतीय साहित्य में एकांकी-जैसे साहित्य-रूप का इससे पहले कभी कोई अस्तित्व ही नहीं था। जहाँ संस्कृत-जैसा समृद्ध साहित्य उपलब्ध हो वहाँ किसी भी साहित्य-विधा का उत्स खोजने के लिए अन्यत्र जाने की आवश्यकता नही हो सकती। अतः जब हम एकांकी की खोज के लिए संस्कृत साहित्य की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें निराश नही होना पड़ता। संस्कृत के महान् काव्य-शास्त्री विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण में दृश्य-काव्य के दो भेद दिये गये हैं—रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेदों में भाण तथा व्यायोग एकांकी के ही दो प्रकार थे, यह निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है :

भाणः स्याद्धूर्तचरितो नानावस्थान्तरात्मकः,
एकांक एक एवात्र निपुणो पण्डितो विटः।

* * *

ख्यातेति वृत्तो व्यायोगः स्वल्प स्त्री जनसंयुतः
हीनो गर्भ विमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः।
एकांकश्च भवेत्………… ……………।

महाकवि भास का 'उरुभंग' तथा नीलकंठ का 'कल्याण सौ गंधिक' एकांकी के उत्कृष्ट नमूने हैं। इसके अतिरिक्त उप-रूपक के अठारह भेदों में गोष्ठी, नाट्य रासक, उल्लाप्य, काव्य तथा अंक भी एकांको के ही कार थे। लेकिन मुगल शासन काल में नाटक, रंग-मंच तथा अभिनय से भारतीय समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध छूट जाने के कारण संस्कृति एकांकितों को इस परम्परा से हिन्दीसाहित्य नाटक की तरह ही लाभान्वित नहीं हो सका। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में भारतेन्दु बाबू ने जब संस्कृत नाटकों के आधार पर हिन्दी में नाटक-लेखन आरम्भ किया तो उनका ध्यान छोटे नाटक लिखने की ओर गया और उन्होने संस्कृत एकांकियों के ढंग पर अनेक एक-अंकीय नाटकों की रचना की। चन्द्रावली तथा अन्धेर-नगरी आदि बड़े नाटकों को छोड़ उनके शेष नाटक एकांकी ही हैं। भारतेन्दु बाबू की प्रेरणा से तत्कालीन लेखको ने बहुत से एकांकी लिखे जो अधिकतर समाज-सुधार सम्बन्धी थे और हल्के हास्य-विनोद से पूर्ण थे। भारतेन्दु जी के अतिरिक्त राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ आदि उस काल के कुछ प्रमुख एकांकीकार हैं। लेकिन संस्कृत एकांकियों की परम्परा अधिक दिन तक नहीं चल सको और शीघ्र ही बंगला नाटकों तथा एकांकियों के अनुवाद के साथ हिन्दी एकांकी की धारा पाश्चात्य एकांकी की ओर मुड़ गयी और फिर इस नयी शिल्प-शैली को स्थायी रूप से अपना कर विकास की एक के बाद दूसरी सीढ़ियाँ चढ़ता चला गया। इस प्रकार हिन्दी एकांकी-साहित्य मुख्य रूप से पाश्चात्य साहित्य का ही ऋणी है।

जयशंकर प्रसाद के 'एक घूंट' को हिन्दी का पहला आधुनिक एकांकी माना जाता है। लेकिन इस कथन में पर्याप्त अत्युक्ति है, क्योंकि यह आधुनिक एकांकी की कसौटी पर पूरी तरह खरा नहीं उतरता। एक ओर जहाँ इसमें पूरे नाटक तथा एकांकी दोनों के गुण न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान हैं वहाँ शिल्प-शैली की दृष्टि से प्राचीनता एवं नवीनता दोनों का संयोग भी है। फिर भी 'एक घूंट' का हिन्दी एकांकी के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है इसमें संदेह

नहीं । वह एकांकी-लेखन के क्षेत्र में एक युग के अन्त तथा आरंभ का सूचक है । इससे उस चेतना का पता चलता है जो संस्कृत को प्राचीन है । नाट्य-शैली को छोड़ने तथा पश्चिम की नयी नाट्य-शैली को ग्रहण करने की ओर अग्रसर हो रही थी ।

आधुनिक हिन्दी एकांकी का विकास

आधुनिक हिन्दी एकांकी का विकास १९३० के आस-पास आरम्भ हुआ । इस समय डा० रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वरप्रसाद तथा गणेशप्रसाद द्विवेदी आदि कई लेखक आधुनिक हिन्दी एकांकी की कल्पना को मूर्त रूप देने में लगे थे । लेकिन उसे साकार रूप देने का श्रेय भुवनेश्वरप्रसाद को मिला । १९३५ में उनका एकांकी-संग्रह 'कारवाँ' प्रकाशित हुआ, जिसने बरबस ही हिन्दी जगत् का ध्यान अपनी ओर खींच लिया । कारवाँ के एकांकी अंग्रेजी भाषा के महान व्यंग्य नाटककार जार्ज बनार्ड शॉ की तेज-तीखी शैली में लिखे गये थे । कारवाँ के प्रकाशन से भुवनेश्वरप्रसाद को जहाँ अत्यधिक प्रशंसा मिली वहाँ कुछ क्षेत्रों ने उनकी कटु आलोचना भी की और शॉ से अत्यन्त प्रभावित होने के कारण उन पर अमौलिकता का आरोप भी लगाया । भुवनेश्वरप्रसाद की आलोचनाओं के पीछे उनके विवादास्पद व्यक्तित्व का ही अधिक हाथ था, वास्तविकताओं का कम उन्होंने रोटी और सेक्स की समस्या को अपने एकांकियों में बड़ी तीव्रता से उभारा था और शैलीगत कई सशक्त प्रयोग किये थे । सांकेतिक रंग-निर्देशों, प्रभावपूर्ण भाषा तथा चुटीले संवादों की दृष्टि से हिन्दी में भुवनेश्वरप्रसाद आज भी अद्वितीय हैं और केवल थोड़े से एकांकियों के बल पर एकांकी, साहित्य के इतिहास में उन्होंने अपना जो महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है वह बहुत दिनों तक अक्षुण्ण रहेगा इसमें सन्देह नहीं । कारवाँ के प्रकाशन के बाद हिन्दी एकांकी यकायक पाश्चात्य एकांकी के समक्ष आ खड़ा हुआ और फिर स्वतन्त्र रूप से अपने विकास-पथ पर अग्रसर हो गया । इसी काल में डा० रामकुमार वर्मा ने अपने गम्भीर ऐतिहासिक

तथा हल्के-फुल्के व्यंग्य-विनोदपूर्ण सामाजिक एकांकी तथा गणेशप्रसाद द्विवेदी ने आदर्शवादी सामाजिक एकांकी लिखे।

१६३५ से १६४० तक हिन्दी एकांकी का विकास अत्यन्त क्षिप्र गति से हुआ। १६३८ में प्रेमचन्द द्वारा संस्थापित प्रमुख साहित्यिक पत्र 'हंस' का एकांकी-विशेषांक प्रकाशित हुआ। इसमें उस समय के सभी जाने-माने एकांकीकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुई। कुछ ऐसे लेखकों की रचनाएँ भी इसमें छपीं जो एकांकी की कला से बिल्कुल अनभिज्ञ थे और केवल हंस-सम्पादक श्री श्रीपतराय के अनुरोध की रक्षा के लिए वे रचनाएँ लिखी थीं। इस स्थिति ने एक महत्वपूर्ण विवाद को जन्म दिया कि क्या साहित्य में एकांकी का कोई स्थान है? हंस में इस विषय पर उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने एक अत्यन्त विचारोत्तेजक लेख लिखा जिसमें उन्होंने प्रतिपादित किया था कि एकांकी की अपनी एक स्वतन्त्र कला है और साहित्य में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। जैनेन्द्रकुमार तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार 'अश्क' के मत से सहमत नहीं थे और उन्होंने अपने उत्तर हंस में ही प्रकाशित भी करवाये। इसमें सन्देह नहीं कि हंस के एकांकी विशेषांक के प्रकाशन से आधुनिक हिन्दी एकांकी को एक सुदृढ़ भूमि प्राप्त करने में सहायता मिली और उसके विकास की गति में वेग आया। हिन्दी एकांकी के विकास में 'अश्क' ने महत्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने उच्चकोटि के सामाजिक एकांकियों की रचना की और रंगमंच तथा एकांकी के घनिष्ठ सम्बन्ध को अक्षुण्ण रखने पर बल दिया। उन्होंने ही सच्चे अर्थों में यथार्थवादी सामाजिक एकांकियों के लेखन का श्रीगणेश किया और चमत्कारपूर्ण ऐतिहासिक कथानकों की ओर से हिन्दी-एकांकीकारों का ध्यान हटा कर सीधे-सादे सामाजिक कथानकों की ओर लगाया। श्री जगदीशचन्द्र माथुर भी इसी आदर्श के समर्थक एकांकीकार हैं और उन्होंने उच्चकोटि के व्यंग्य-विनोदपूर्ण तथा गंभीर सामाजिक एकांकी लिखे हैं। लेकिन साथ ही उन्होंने सफल ऐतिहासिक एकांकी भी लिखे हैं। उदयशंकर भट्ट ने अपने एकांकियों में प्राचीन इतिवृत्तों में स्वाभाविकता लाकर यथार्थ संवेदनों को उभारा है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण ऐतिहासिक एकांकियों की सफल रचना की है। देवेन्द्रनाथ शर्मा ने

अपने एकांकियों में ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक इतिवृत्त को मनोवैज्ञानिक स्तर पर कुशलता से प्रस्तुत किया है। विष्णु प्रभाकर ने अपने एकांकियों में राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का समर्थन करने वाले समस्यामूलक एकांकी लिखे। इसके अतिरिक्त इस काल में भगवतीचरण वर्मा, गोविन्दवल्लभ पन्त, सुदर्शन आदि ने भी उत्कृष्ट एकांकी लिखे।

१९४० के बाद हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में अनेक नयी प्रतिभाओं ने प्रवेश किया। इस समय तक हिन्दी एकांकी साहित्य की एक महत्वपूर्ण स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। अब एकांकी-लेखन के क्षेत्र में नये-नये प्रयोगों का युग आरम्भ हुआ। विषय-वस्तु तथा शिल्प दोनों क्षेत्रों में नयी-नयी उद्भावनाएं की गयी। एक ओर एकांकी की विषय-वस्तु को जीवन के अधिक निकट लाने का प्रयास हुआ और दूसरी ओर शिल्प को अधिक प्रभावशाली ढंग से रंग-मंच पर प्रस्तुत करने योग्य बनाया गया। इसके साथ-साथ एकांकियों में सांकेतिक एवं प्रतीक शैली का प्रवेश हुआ और आंचलिकता की लहर ने भी अपना प्रभाव डाल कर एकांकी की विषय-वस्तु को गाँवों की ओर मोड़ा। नये एकांकीकारों में डा० लक्ष्मीनारायण लाल का महत्व दो दृष्टियों से विशेष है। एक तो वे एकांकी लेखन में नये-नये प्रयोग कर रहे हैं, दूसरे हिन्दी रंग-मंच के उत्थान के लिए सक्रिय रूप से प्रयास में रत हैं। नये हिन्दी एकांकीकारों में डा० लक्ष्मीनारायण लाल के अतिरिक्त डा० धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, मार्कण्डेय, सत्येन्द्र शरत, मोहन राकेश तथा डा० विपिन अग्रवाल मुख्य हैं। हिन्दी एकांकी का भविष्य नि:संदेह अत्यन्त उज्ज्वल है क्योंकि नये एकांकीकारों के साथ-साथ पुरानी पीढ़ी के एकांकीकार भी अपनी उत्तमोत्तम कृतियों से हिन्दी के भण्डार को समृद्ध बनाने में पूरी निष्ठा से लगे हैं।

—सम्पादक

भुवनेश्वर प्रसाद | **स्ट्राइक**

पात्र

पहला दृश्य

पुरुष (श्रीचन्द)

स्त्री

दूसरा दृश्य

तीन पुरुष

एक युवक

पुरुष (श्रीचन्द)

तीसरा दृश्य

पहले दृश्य का पुरुष

दूसरे दृश्य का युवक

पहला दृश्य

[एक मध्यवर्गीय बङ्गले के खाने का कमरा, जो बरामदे में पर्दे डालकर बना लिया गया है। एक बड़ा-सा साइड टेबिल जिस पर चीनी के बरतन, प्लेट-प्याले नुमायशी ढङ्ग से रखे हैं। पास में एक छोटी मेज पर फोर्क, क्वाकरओट्स, पाल्सन बटर और अचार के दो अमृतबान सजे हैं। खाने की मेज़ अंडाकार है, जिसके चारों तरफ चार कुर्सियाँ पड़ीं हैं। दो पर एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हैं; पुरुष, सुपुरुष, स्त्री, कुछ बोले तो पता चले, कम-से-कम दस मिनट से खामोश तीसरे पहर की चाय पी रही है।]

स्त्री : (चाय का प्याला घुमाते हुये) तो सरदार साहब बहुत चौंके !

पुरुष : (अनमना) हूँ···

स्त्री : (कुछ कहने के लिये साँस भरकर रह जाती है।)

पुरुष : तो आज नौकर दोनों छुट्टी ले गये हैं !···

स्त्री : (दो घूँट चाय पीकर रूमाल से ओंठ पोंछती हुई) सरदार साहब की डायरेक्टरों में तो खूब चलती है···

पुरुष : (हास्यास्पद उत्साह से) यह ! यही तो इन कमबख्तों को मिटा देता है। यह समझते हैं कि बहुमत इन्हें गदहे से बछड़ा बना

देगा ! कमबख्त यह नहीं समझते कि अब बहुमत के माने ही बदल गये हैं। बहुमत थोड़े से बेजरर, अधमरे केचुओं का नाम थोड़ा ही है ! वह शक्ति, दुनिया को हिला देने वाली शक्ति का नाम है और वह हमेशा एक आदमी—एक आदमी में होती है।

[स्त्री चुपचाप चाय उड़ेलती है और दूध डालकर ध्यान से प्याले को देख रही है। पुरुष रोटी पर बेरहमी से मक्खन लगा रहा है और कुछ देर खामोशी-सी हो जाती है।]

पुरुष : सरदार साहब, राजा साहब, बाबू साहब, सबके साथ यही दिक्कत है। कमबख्त जीवन की कला नहीं जानते; म्रियमान से निहत्थे पाजियों की तरह यह मौत तक खिसकते जाते हैं ! जब उन्होंने देखा कि मैं उनसे भीख नहीं माँगता, उनके तलवे नहीं सहलाता, ग्रह नहीं बनाता, षड्यंत्र नहीं करता तो मुँह बाकर रह गये ! जी हाँ, मुँह बाकर रह गये । (प्याला रखकर हँसता है) यह कुछ समझते-बूझते तो हैं नहीं। जब कभी इनके ठोकर लगती है, तो बस खड़े होकर मुँह बा देते हैं। (आवाज धीमी करता है) लेकिन कपड़ों के नीचे यह सब इज़्ज़तदार मोटे घुड़मुँहे, गदहे हैं गदहे ! हाँ, व्यवस्थित समाज में इनका एक लाभ ज़रूर है—यह ठोकरें ख़ूब झेल लेते हैं ! डिविडेण्ड कम हुआ, इनके हाँथ-पाव फूल गये; किसी कॉलिज के चिबिल्ले ने किताबी अंग्रेजी में स्ट्राइक की धमकी दे दी, इनके हाथ-पाँव फूल गये, यह बौखला गये ! (हाथ को नाटकीय ढङ्ग से हिलाते हुये) मैंने साफ एलान कर दिया कि मैं तीन साल तक कोई डिविडेण्ड नहीं बाटूँगा। (भद्दी तौर से अँगूठा दिखाता है) अँगूठा कर लो मेरा !

[स्त्री चाय खत्म करके घड़ी की तरफ़ देखती है और भवों में कुछ फुसफुसाती है, पुरुष बेचारा क्या समझे ! वह एकाग्र खाता रहता है। कमरे में फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

पुरुष : (ऊबा-सा) तो आज नौकर दोनों गायब ! मेम साहब ने चाय बनाई है. पर शाम को क्या होगा ! मेरी तो मीटिंग शायद आठ पर खत्म होगी।

स्त्री : (रूमाल से उँगलियाँ मलते) मैं···मैं (सहसा) तो जा रही हूँ।

पुरुष : कहाँ जा रही हो ! कहाँ !

स्त्री : (बाहर की तरफ़ रूमाल हिलाते हुए) वहाँ।

पुरुष : (बाहर की तरफ़ देखता है) वहाँ ! बाज़ार, शापिंग के लिए !

स्त्री : नहीं मैं तो लखनऊ जा रही हूँ, आख़िरी जी० आई० पी० से लौट आऊँगी।

पुरुष : (अपना आश्चर्य भरसक छिपाते हुए) लखनऊ, जी० आई० पी०, आख़िर क्यों !

स्त्री : (चाय खत्म कर चुकी है) कुछ नहीं, ऐसे ही घूमने। सरदार साहब की बीबी हैं, मिसेज़ निहाल हैं, मैं हूँ, मिस मित्तर हैं—उन्हीं को कुछ काम है, न जाने रेडियो लेने जा रही हैं क्या !

पुरुष : (उँगली पोंछ रहा है) तो यह कहो ! (रुककर) लेकिन कार क्यों नहीं ले जातीं !

स्त्री : नहीं कार—कार नहीं। ज्यादा-से-ज्यादा जी० आई० पी० से लौट आयेंगे। वही शायद आख़िरी गाड़ी है।

पुरुष : (जेब से सोने की जेब घड़ी निकालकर और उसे वास्केट पर पोंछकर) तो जी० आई० पी० यहाँ आती है १०-१५ पर, तुम यहाँ १०-२५ पर आ जाओगी। कार मैं पम्प पर छोड़ दूँगा—अरे मिलखीराम के पेट्रोल पम्प पर। खाने के लिये यह करना कि मैं कार में टिफ़िन कैरियर रख लूँगा, तुम स्टेशन से सालन वगैरा ले आना; न होगा रोटियाँ यहीं बन जायँगी (जेब में घड़ी रख लेता है और जेबें टटोलकर सस्ता सिगरेट केस निकालता है और एक सिगरेट

जलाता है। धुँआ छोड़ते हुए) अब सरदार साहब के मिज़ाज ठिकाने आ जायँगे। कोई उसूल नहीं, कोई हौसला नहीं। भला इसे ज़िंदगी कहते हैं!

स्त्री : तो जी० आई० पी० यहाँ साढ़े दस पर आती है?

पुरुष : (फिर घड़ी निकाल लेता है और फिर उसे पोंछता है) नहीं १०-१५ पर। और जी० आई० पी० की गाड़ियाँ लेट नहीं होतीं—यह ई० आई० आर० नहीं है। (जैसे कोई अपनी ही चीज का बखान कर रहा हो) दुनियाँ का भविष्य उचित समय पर उचित काम करने वालों के हाथ में है—दुनियां की सारी दौलत, सारा आराम, सारा जस उसका है जो अपनी जगह पर कायम है और काम का जो छोटा हिस्सा उसका है उसे मशीन की तरह पूरा कर रहा है। अमरीका का एक बहुत बड़ा लेखक है बरनार्ड शा, उसने कहा है...

स्त्री : (सहसा ऊबी-सी) मिसेज़ निहाल ने कहा तो था कि वह अपनी कार भेजेंगी। तुम्हें मीटिंग में कब जाना है?

पुरुष : (चौंककर घड़ी की तरफ़ देखता है) साढ़े चार! तो लो मैं चला—(गुनगुनाता है)—चार बजकर सत्रह—तीन या चार मिनट मुझे ब्यूक कम्पनी में लगेंगे, चार—इक्कीस—खैर, तो चलो तुम्हें पिंडी के यहाँ छोड़ दूँगा; वहाँ से...या आओ निहाल के वहाँ तक! दो मिनट की ही तो बात है।

स्त्री : (अँगड़ाई लेते हुए) अच्छा! (खड़ी हो जाती है) यही साड़ी पहने रहें या दूसरी (मुड़कर साड़ी देख रही है) पहन लें।

पुरुष : (सिगरेट दो-तीन बार चूसकर फेंकते हुए) जैसा तुम्हारा जी चाहे, लेकिन तुम्हें मेरे सर की क़सम, बतला दो लखनऊ में क्या है?

स्त्री : (बरबस मुस्कराती हुई) लखनऊ में?—बहुत-सी चीजें—छोटा-बड़ा इमामबाड़ा, चिड़ियाघर, हज़रतगंज, अमीना···

पुरुष : नहीं, मैं पूछता हूँ, आज शाम को कोई खास बात ?

स्त्री : (जाते हुए) आज शाम को खास बात ? कोई खास बात नहीं है।

पुरुष : (जैसे एक बड़ी मुहिम के लिए तैयार होते हुए) यहाँ आओ, यहाँ बैठो, (स्त्री घूमकर खड़ी हो जाती है) बैठो, मैं देखता हूँ, तुम कुछ दिनों से ऐसी ही हो रही हो। मैं जानता हूँ, तुम्हारी यहाँ तबीयत नहीं बहलती; पर छुट्टियों में निर्मल आ जायगा, मोनी भी शायद यहीं आये। तुम्हें मालूम हुआ, मोनी अबकी बी० ए० में फ़र्स्ट रही। लेकिन हाँ, बताओ यह तुम्हें हुआ क्या है ?

स्त्री : होता क्या ? कुछ नहीं हुआ, तुम अगर मेरी तबीयत का एक ख़ाका बनाओ तो लकीर वहाँ···वहाँ बिजली तक पहुँच जाय—

पुरुष : (उत्साहित होकर) हाँ, लेकिन फिर यह बेताबी क्यों है ? देखो आदमी के सामने बड़ी समस्या यह है कि वह अपनी बची-खुची शक्ति किस तरह काम में ले आये ? आदिम जंगलीपन से लेकर आज तक की सभ्यता तक जो कुछ भी आदमी ने अपने को दुखी या सुखी बनाने के लिए किया है, वह इस शक्ति को काम में लाने के लिए। फिर दुःख या सुख तो इतनी ठोस चीजें हैं कि एक दिन तुम देखोगी कि यह शीशियों में बिका करेंगी, शीशियों में। मुझे इन टिसुए बहाने वालों से नफ़रत है, सख्त नफ़रत ! यह सिर्फ़ हरैली ही नहीं हैं, यह तो अपनी हार के गीत गाते हैं, नारे लगाते हैं।

स्त्री : अच्छा उठो, फिर मुझे कार पर न पहुँचाओगे ?

पुरुष : (फिर घड़ी निकालता और उसे पोंछता है) असम्भव ! तुम अब मिसेज़ निहाल का इन्तज़ार करो।

[पुरुष जल्दी से भीतर चला जाता है, स्त्री वहीं बाहर की तरफ़ घूरती हुई बैठी रहती है। थोड़ी देर में पुरुष भीतर से आता

है, बगल में पुराना फेल्ट हैट दाबे हाथ के छोटे डण्डे को रूमाल से पोंछ रहा है।]

पुरुष : १०-१५ पर तुम स्टेशन आ जाओगी, वहाँ से मिलखीराम तक का रास्ता है ५ मिनट का, १०-२०, यानी १०-३० तक तुम यहाँ होगी, यानी १०-४० तक हम-तुम यहीं इसी टेबुल पर डिनर के लिए बैठे होंगे ! मैं स्टेशन आ जाता, लेकिन मिस मित्तर—तुम व्यर्थ जलोगी। (भद्दी हँसी हँसता है, स्त्री पर जैसे इसका कोई असर नहीं होता) अच्छा, चीरिओ !

[सीढ़ियों पर से तेज़ी से उतरता हुआ चला जाता है। स्त्री वैसे ही बैठी रहती है, फिर अनमनी भीतर उठकर चल देती है। स्टेज पर एकबारगी अंधकार हो जाता है। बीच में दो बार रोशनी होती है, जिसमें पूरे सीन में खाली मेज़, और कुर्सियाँ दिखलायी देती हैं। घड़ी जिसमें पहले ८-३० बजा है फिर ६ ।]

दूसरा दृश्य

[एक मध्यवर्गीय क्लब का कमरा, तेज़ तीखी रोशनी हो रही है। मेज़ों पर ताश और भरी हुई एश-ट्रे बिखरी हैं, कुर्सियाँ भी अनेक चारों तरफ़ तितर-बितर पड़ी हैं। कोने में एक बड़ी फ्रेंच विण्डो (खिड़की) के सामने सोफों पर तीन आदमी बैठे हैं। सीन में सिर्फ़ उनकी पीठें दिखायी दे रही हैं। पास ही एक कुर्सी पर सामने की छोटी मेज़ पर सुरुचि से पकड़े पहने एक युवक बराबर ताश फेंट रहा है। खिड़की के फ्रेम में तारों से खिला हुआ आकाश तस्वीर की तरह जड़ा हुआ है। दीवार की बड़ी घड़ी ८-४५ बजा रही है। कमरे में सब ख़ामोश हैं, पर निस्तब्धता नहीं है।]

प० आदमी : (आवाज वृद्ध-सी है) न मालूम मैं यह मनहूस ब्रिज का खेल क्यों खेलता हूँ !

दूसरा : (जम्हाई लेता हुआ) क्या किया जाय, आओ कोई और झंडा ऊँचा करें।

तीसरा : यह लोग आते भी तो नहीं। (कुर्सी पर के युवक की तरफ़ घूमकर) देखो जी तुम मिश्रित समाज की चर्चा चलाओ...

[दोनों आदमी घूमकर युवक की तरफ़ देखते हैं। तीनों आदमी मोटे अधेड़, कीमती कपड़े पहने और अत्यन्त सन्तुष्ट हैं।]

युवक : (झेंपता-सा) मैं कैसे उठा सकता हूँ। हाँ, मेरी पत्नी आती तो मैं ज़रूर ऐसा करता। देखिए उन्हें...

[तीनों एकबारगी 'हूँ' करते हैं और फिर मुड़ के बैठ जाते हैं और ख़ामोश हो जाते हैं। युवक फिर ताश फेंटने लगता है।]

पहला : (जेब से सिगरेट-केस निकालता है और फिर रख लेता है।) चलो भाई चलें, मुझे तो सुबह से ही काम है।

दूसरा : (मुड़कर घड़ी देखते हुए) यह श्रीचन्द बुत्ता दे गया!

पहला : नहीं भाई, कहीं फँस गया होगा। उसके तो मकड़ी की तरह सौ आँखें हैं!

युवक : वह आयेंगे ज़रूर, मेरी तो दावत कर गये हैं।

तीनों : (मुड़कर) अच्छा? और पट्ठे की पत्नी आज है नहीं?

(सब एक-दूसरे की ओर देखते हैं।]

युवक : अच्छा! मुझे पता होता तो मैं कभी प्रतीक्षा न करता।

पहला : इसे—श्रीचंद को देखो, जब वह वकालत छोड़कर व्यापार में आ रहा था, मुझे इसकी सफलता की तनिक भी आशा न थी, पर देखो—आज वह एक कम्पनी का सर्वेसर्वा बन गया है।

(हँसता है।)

दूसरा : (जम्हाई लेता और अँगूठियों वाली उँगली से गुटकियाँ बजाता

है।) मैं तो भाई दिन-ब-दिन मानता जाता हूँ कि भाग्य भी कोई चीज़ है।

[युवक ताश रखकर एकाग्र हो, इन लोगों की बातें सुनता है।]

तीसरा : (उठ खड़ा होता है) आओ भाई, चलो। आइए मिस्टर सहाय, आपको कार पर छोड़ आऊँ। घर तक…

पहला : बैठो न, श्रीचंद आता ही होगा।

युवक : और आपसे भी तो उन्होंने कार में छोड़ आने के लिए कहा था।

तीसरा : (बैठते हुए) हूँ, हूँ, तब तो रुकना ही पड़ेगा।
(युवक कोई भी बात शुरू करने का इरादा करता है।)

युवक : आज मेरठ षड्यन्त्र का मामला शुरू हो गया।

तीनों : क्या ? अच्छा !

[तीनों ऐसी बातों की तरफ़ से उदासीनता दिखलाना चाहते हैं ; पर कुछ असफल से हो रहे हैं।]

पहला : श्रीचन्द ने इनके बारे में ख़ूब कहा !
(हँसता है। सब उसकी तरफ़ देखकर सुनना चाहते हैं।)

पहला : (कोट का कालर ठीक करते हुए) मेरे साथ कमिश्नर से मिलने गया, उन्होंने मेरठ की बात चलायी। आप छूटते ही हिन्दुस्तानी में—हिन्दुस्तानी में बोले—अरे साहब, इनको तो ऐसे ही छोड़ देना चाहिए, यह तो हम लोगों के खिलौने है।

[तीनों फैशनेबल हँसी हँसते हैं, युवक भी उसमें शामिल होता है।]

दूसरा : हर देश, हर सरकार के सामने समस्या सिर्फ़ यही है कि किस तरह उसके कर कम-से-कम किये जा सकते हैं। आप कर कम कर दीजिए, प्रजा अपने-आप सम्पन्न होगी।]

पहला : हम लोगों-सा कोई बेसरोकार आदमी रूस जाकर देखे कि इन शरीफ़ों ने वहाँ क्या कर दिखाया है कि दुनिया भर को रूस के सामने हेय समझते हैं !

तीसरा : यानी, खुदा तक को !

[फिर तीनों ऊबी-सी हँसी हँसते हैं। बाहर कुछ खटका-सा होता है। सब लोग बाहर की तरफ़ देखते हैं। पहले सीन का परिचित पुरुष संतोष और लापरवाही से आता है।]

पुरुष : (अपना हैट और डंडा एक खाली मेज़ पर रखते हुए) तो तुम लोग मेरा इन्तज़ार कर रहे थे ! ब्रिज ख़त्म कर दिया ?

दूसरा : (कमरे के बीच में आते हुए) आज सहाय फिर हार गये।

पुरुष : (हँसता हुआ) सहाय तुम बड़े हरैले हो !

[अब सब अपनी जगहों से उठकर कमरे के बीच में आ गये हैं।]

पहला : जीत तो सब तुम्हारे हिस्से में पड़ी है !

पुरुष : अरे भाई, क्या जीत, क्या हार ? यहाँ तो इसका कभी सपने में भी ख़याल नहीं करते। हम तो ईमानदारी से जीना जानते हैं। मैं फिर कहता हूँ, जीवन एक कला है और सबसे बड़ी कला !

दूसरा : (जम्हाई लेते हुए) चलो भई, बड़ी देर हो गयी। (सब घड़ी की तरफ़ देखते हैं, पुरुष फिर अपनी सोने की घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है।) चलो, घर तक छोड़ना पड़ेगा !

[तीनों भीतर जाकर अपना हैट लेते हैं, केवल युवक नंगे सिर है।]

पहला : यह चौकीदार न जाने कहाँ मर गया है !

दूसरा : कहता है ! क्या खूब ! क्या नयी पत्नी कर लाया है ! ज़रा सोचो नयी पत्नी !

[सब जवानों की तरह हँसते हैं, सिर्फ युवक कुछ झेंपा-झेंपा-सा है और सबसे पीछे बाहर जाता है। बाहर बरामदे से दो या तीन बार आवाज़ आती है 'चौकीदार !' फिर मोटरों के स्टार्ट होने की और फ़िर ख़ामोशी। स्टेज पर अँधेरा हो जाता है, पर बीच में दो या तीन बार रोशनी होती है और किसानों का-सा बुझा हुआ चेहरा लिये एक चौकीदार मेज़ झाड़ता और जले हुए सिगरेट बीनता हुआ दिखायी देता है।]

तीसरा दृश्य

[पहले सीन के कमरे का बरामदा, लम्बा और साधारण से ज़रा ऊँचा। खम्भों के पास बड़े-बड़े पाम रखे हैं, खम्भों पर बेलें भी फैली हैं, दरवाजे सब बन्द हैं, जिनके सामने तीन-चार बेमेल कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। सीढ़ियों पर एक बड़ा झबरा कुत्ता लेटा है। दृश्य के शुरू में कोई आदमी नहीं दिखलायी देता, पर तत्काल ही गृहस्वामी और युवक जो क्लब से आ रहे हैं, सीढ़ियों पर चढ़ते दिखायी देते हैं। कुत्ता सिर उठाकर धीमी जानकारी से गुर्राता है, फिर पूँछ हिलाता हुआ पीछे-पीछे दौड़ता बरामदे में लेट जाता है। स्टेज पर कम-से-कम रोशनी है।]

पुरुष : (मेहनत से चढ़ते हुये) तो यह कहिये ! (जेब टटोलता है) रुकिए......

[पुरुष एकबारगी सीढ़ियों से उतरकर बँगले के पीछे की तरफ़ जाता है। युवक वहीं खड़ा होकर उसकी ओर उत्सुकता से देखकर मुस्करा रहा है। शीघ्र वह फिर वापस आ जाता है और उतावली से जेब टटोलता है।]

पुरुष : अब यह नहीं पता, मेरी पत्नी चाभी मुझे दे गयी या कहीं रख गयी ! नौकर···मैं कहता हूँ कि मेरी ज़िन्दगी में अगर कोई सुर

बेसुरा है तो यह नौकर। छुट्टी-छुट्टी-छुट्टी, रोज़-रोज़ इनको छुट्टी चाहिए, कम्बख़्त यह नहीं जानते···

[युवक सहसा एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। पुरुष स्विच टटोलकर बत्ती जला देता है और फिर दूसरी कुर्सी पर ठीक युवक के सामने बैठ जाता है।]

पुरुष : (एकबारगी हँसता हुआ) अगर स्विच कमरे के भीतर होता तो लुत्फ़ आ जाता!

युवक : खैर यहाँ भी तो आराम से बैठे हैं।

पुरुष : शायद ६-३० बजा है, (घड़ी निकालता है। और उसे पोंछता है) ६-२७, खैर, मेरी पत्नी यहाँ १०-३० तक आ जायगी। खाना वह साथ ही लायेगी। (जम्हाई लेता है) और कहिए।

युवक : (उत्साह से) मुझे कोठी तो ख़ैर मिल गयी··

पुरुष : (जूते को फटफटाते) ख़ैर, कोठी-ओठी तो है, आपने यह नहीं बताया कि आपने शादी क्यों नहीं की?

युवक : (कठिनता से) नहीं ही की--नहीं का कोई कारण तो है नहीं।

पुरुष : (मुस्कराता है) मैं सच-सच कहता हूँ, मैं आप जवान आदमियों को देखकर कई बार बहुत खुश होता हूँ।

युवक : (जैसे इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं है) जी हाँ।

(हँसता है।)

पुरुष : (सम्हलकर) नहीं। मैं आपसे दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ। आप लोग हमसे एक पीढ़ी आगे हैं, पर अगर आपसे हिसाब माँगा जाय तो आपके पास क्या है? आप मुझे बताइए, आप लोगों ने दुनिया को क्या दिया? मैं वैज्ञानिक आविष्कारों की बात नहीं करता, उसकी तो एक पूरी स्कीम है, जिसमें पीढ़ियों और समाज का कोई दख़ल ही नहीं है, वह तो प्रकृति धीरे-धीरे अपने-आप

पूरा कर रही है। मैं जानता हूँ, आप मेरे विचारों को दकियानूसी समझ कर मन-ही-मन हँस रहे हैं, लेकिन भाईजान, आपने कौन-से तीर मारे हैं ? आप बताइए ?

युवक : ज़िक्र तो शादी का था ?

पुरुष : हाँ, हाँ, शादी को ही लीजिए। आप मानते हैं कि हर एक आदमी को जाति की ज़िन्दगी में दाखिल होना ज़रूरी है। जैसा मैं प्रायः कहता हूँ कि दुनिया साझे की दुकान है और हर एक बालिग़ आदमी का कर्तव्य है कि उसका साझेदार हो। अगर इस कोशिश में आप अपनी जान नहीं खपा देते, तो आप मनुष्य कहलाने का कोई हक़ नहीं रखते। (उत्तेजित होकर) मैं कहता हूँ, सब पुस्तकें ग़लत हैं, सब झूठी हैं !

युवक : मैंने तो शादी नहीं की—नहीं की कि मैं शायद कभी भी औरत का दिमाग़···

पुरुष : भाईजान, शादी एक गहरी समस्या है, आप उसके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते। मैं पूछता हूँ, आप एक फैक्ट्री में तो हर तरह का विज्ञान, कानून, विशिष्ट ज्ञान लगाते हैं। फिर क्या कारण है कि जीवन को ऐसे परमात्मा के भरोसे छोड़ दिया जाय कि उसमें आदमी की सस्ती-से-सस्ती और निकम्मी-से-निकम्मी शक्तियाँ ही सिर्फ़ काम में लायी जायँ ! आप कहते हैं, मैं औरत को समझ पाता। जनाब, यह सब कोरी बातें हैं, बातें ! समझने की क्या ज़रूरत है ? मशीन की एक पुली दूसरी पुली को नापने, जोखने, समझने नहीं जाती। स्त्री-पुरुष तो जीवन की मशीन के दो पुरज़े हैं—दो !

युवक : यह फैक्ट्री और मशीन की भी एक ही रही !

पुरुष : नहीं साहब, आप मुझे देखिए, मेरी पहली पत्नी थी। कम्बख़्त को हमेशा मुझसे शिकायत रही, लेकिन उसकी बीमारी में जब मैं

प्रतिक्षण उसके सिरहाने रहा तो मेरा नाम रटती हुई मरी। अब यह मेरी दूसरी पत्नी है। हमारे बच्चे नहीं, यानी इस पत्नी के। हम लोग क्लबों में साथ-साथ नहीं जाते, हफ़्ते में एक बार सिनेमा देखते हैं, पहाड़-जङ्गल जाने का मेरे पास वक्त नहीं, पर हम लोग बेहद खुश हैं—कभी हम में कोई भेद-भाव हुआ ही नहीं। मैं कहना चाहता था कि दोनों ने अपनी-अपनी जगह को समझ लिया है और वहाँ हम लोग अडिग हैं। वह बीमार पड़ती है, मैं डाक्टरों से घर नहीं भर देता; मैं बीमार पड़ता हूँ, वह रोती-धोती नहीं। मैं क्या कहूँ ? मैं जानता हूँ, इस वक्त मेरी पत्नी स्टेशन के बुकस्टाल पर कौन-सी किताब देख रही है। मैं जानता हूँ, वह स्टेशन पर गाड़ी के दस मिनट पहले पहुँच जाती है।

युवक : पर मान लीजिए, मशीन का एक पुरज़ा बिगड़ जाय।

पुरुष : (हँसता हुआ) तो पुरज़ा बदल डालिए, स्वयं बदल जाइये। किताबें ? मैं आपको बताऊँगा, किताबें क्या हैं ? मैंने रुई के व्यापार पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। वही सब बातें लिखी जो लोग रोज़ सोचते थे। और जिनकी चर्चा करते रहते थे। नतीजा यह हुआ कि किताब की धूम मच गई, पर उन्हीं उसूलों को जिनकी मैंने वकालत की, काम में लाने की बात मैं स्वप्न में भी नहीं सोचता।

[पुरुष सहसा यह आशा करके कि युवक कुछ कहेगा, चुप हो जाता है। युवक सिर झुकाये हुये ख़ामोश है। कुत्ता इतना शोरगुल सुनकर पास आकर खड़ा हो गया है। कुछ देर के लिए ख़ामोशी हो जाती है।]

युवक : (सिर उठाकर) फैक्ट्री, पुरज़ा, वाकई यह ख़ूब रही !

[पुरुष कुछ कहने के लिए तैयार होता है, पर सहसा फाटक खटकता है और कुत्ता भौंकते हुए दौड़ता है। वह कुत्ते को बुलाता

है और बरामदे के किनारे खड़े होकर ज़ोर से पुकारता है। एक चपरासी हाथ में बाइसिलक थामे आता है और सलाम करके जेब में से एक लिफ़ाफ़ा निकालकर देता है और फिर सलाम करके खड़ा हो जाता है।]

पुरुष : क्या है, तुन कौन हो? (लिफ़ाफ़ा लेकर अपनी घड़ी की चेन के चाकू से उसे खोलता है—रोशनी की तरफ़ जाता है।) ऐं!

चपरासी : मैं निहाल साहब का ड्राइवर हूँ, मेम साहब ने कहलाया है, वह कल आयेंगी!

पुरुष : (खत पढ़ना छोड़कर) कल आयेंगी? ऐं! तुझे क्या मालूम?…

चपरासी : सब मेम साहब वहाँ रहेंगे, मोटर वापस कर दी; मुझसे कहा…

पुरुष : (टहलते हुए उतावली से) और खाना, मकान…और कार मेरी भिलखीराम के पम्प पर खड़ी है!

[चपरासी फिर सलाम करता है और चल देता है, थोड़ी दूर चल कर कहता है]

चपरासी : हुज़ूर, आपका कुत्ता बड़ा पानीदार है। अंग्रेजी है?

पुरुष : (हताश भाव से) आख़िर—आख़िर, हूँ।…

युवक : (उठते हुये) आइए, मेरे होटल में आइए, आपकी फैक्ट्री में तो आज स्ट्राइक हो गयी!

पुरुष : मैं कहता हूँ, मेरी कार मिलखीराम के पम्प पर खड़ी है।

(फिर ख़त बत्ती के नीचे ले जाकर पढ़ता है।)

[ड्राप]

रामकुमार वर्मा | दीप-दान

पात्र

कुँवर उदयसिंह	पन्ना (धाय माँ)
सोना	चन्दन
सामली	कीरत

बनवीर

काल—सन् १५३६ ई०

समय—रात्रि का दूसरा प्रहर।

स्थान—कुँवर उदयसिंह का कक्ष।

निर्देश : पूरी सजावट है। दरवाजों पर रेशमी परदे पड़े हैं। एक पार्श्व में उदयसिंह की शैया है। सिरहाने पन्ना (धाय माँ) के बैठने का स्थान है।

[नेपथ्य में नारियों की सम्मिलित नृत्य-ध्वनि। मृदंग और कड़खे की रमक ; फिर नारियों का सम्मिलित कण्ठ से गान।]

कङ्कण बंधन रण चढण, पुत्र बधाई चाव।
तीन दिहाड़ा त्याग रा, काँई रंक काँई राव॥

काँई रंक काँई राव॥
काँई रंक काँई राव॥

[फिर नृत्य की ध्वनि]

घर जाताँ ध्रम पलटताँ, त्रिया पड़ंता ताव।
ए तीनहु दिन मरण रा, काँई रंक काँई राव॥

काँई रंक काँई राव॥
काँई रंक काँई राव॥

[यह संगीत नेपथ्य में धीरे-धीरे हलका सुनाई पड़ता है ।]

उदयसिंह : (दौड़ता हुआ आता है, पुकारता है) धाय माँ, धाय माँ ! (कोई उत्तर नहीं मिलता । अपने-आप) धाय माँ कहाँ हैं ! (फिर पुकार कर) धाय माँ !

पन्ना : (भीतर से आती हुई) क्या है, कुँवर ! (देखकर) अरे, साँझ हो गई, और तुमने अभी तक अपनी तलवार म्यान में नहीं रक्खी ?

उदयसिंह : धाय माँ, देखो न कितनी सुन्दर-सुन्दर लड़कियाँ नाच रही हैं । गीत गाती हुई तुलजा भवानी के सामने नाच रही हैं । चलो न ! देखो न !

पन्ना : मैं नहीं देख सकूँगी, लाल !

उदयसिंह : नहीं धाय माँ, चलो न । थोड़ी देर के लिए चलो न ।

पन्ना : नहीं कुँवर, मुझे इस समय नाच देखना अच्छा नहीं लगता ।

उदयसिंह : क्यों नहीं अच्छा लगता ? मैं तो उन्हें बड़ी देर तक देखता रहा । और वे भी वे···भी तो मुझे बड़ी देर तक देखती रहीं, धाय माँ ! मैं कितना अच्छा हूँ, धाय माँ !

पन्ना : बहुत अच्छे हो । तुम चित्तौड़ के सूरज हो । महाराणा साँगा जी के छोटे कुँवर । सूरज की तरह तुम्हारा उदय हुआ है । तभी तो तुम्हारा नाम कुँवर उदयसिंह रक्खा गया है ।

उदयसिंह : (हँसकर) अच्छा । यह बात है ! पर क्या रात में भी सूरज का उदय होता है ! मैं तो रात में भी हँसता खेलता रहता हूँ ।

पन्ना : दिन में तो तुम चित्तौड़ के सूरज हो, कुँवर ! और रात में तुम राजवंश के दीपक हो । महाराणा साँगा के कुल-दीपक ।

उदयसिंह : कुल-दीपक ! कहीं तुम मुझे दान न कर देना, धाय माँ ! वे नाचने वाली लड़कियाँ तुलजा भवानी की पूजा में दीपदान करके

ही नाच रही हैं। वे दीपक छोटे-से कुण्ड में कैसे नाचते हैं, धाय माँ! (मचले हुए स्वर में) चलो न, धाय माँ! तुम उनका दीप-दान देख लो। जिस तरह उनके दीपक नाचते हैं उसी तरह वे भी नाच रही हैं।

पन्ना : मैं इस समय कुछ नहीं देखूँगी, कुँवर!

उदयसिंह : (रूठ कर) तो जाओ, मैं भी नहीं देखूँगा। मैं उदयसिंह भी नहीं बनूँगा, और कुल-दीपक भी नहीं। कुछ नहीं बनूँगा।

पन्ना : रूठ गये। कुँवर, रूठने से राजवंश नहीं चलते, जाओ! विश्राम करो। देखो, तुम्हारे कपड़ों पर धूल छा रही है। दिन भर तुम तलवार का खेल खेलते रहे, थक गये होगे। जाओ, शैया पर सो जाओ। मैं तुम्हारी तलवार अलग रख दूँगी।

उदयसिंह : (रूठे हुए स्वर में) तब तो मैं तलवार के साथ ही सो जाऊँगा।

पन्ना : अभी वह समय नहीं आया, कुँवर! चित्तौड़ की रक्षा में तुम्हें कई दिनों तक तलवार के साथ ही सोना पड़ेगा।

उदयसिंह : (रूखे स्वर में) तुम्हें तलवार से डर लगता है? जो बार-बार तलवार रखने को कहती हो?

पन्ना : तलवार से डर! चित्तौड़ में तलवार से कोई नहीं डरता, कुँवर! जैसे लता में फूल खिलते हैं न, वैसे ही यहाँ वीरों के हाथों में तलवार खिलती है...तलवार चमकती है।

उदयसिंह : (उसी तरह रूखे स्वर में) अब मेरा मन बहलाने लगी! तुम नाच देखने नहीं चलती तो मैं ही अकेला चला जाऊँगा। मैं जाता हूँ। (जाने को उद्यत होता है।)

पन्ना : नहीं कुँवर! तुम कभी रात में अकेले नहीं जाओगे। चारों तरफ जहरीले सर्प घूम रहे हैं। किसी समय भी तुम्हें डँस सकते हैं।

उदयसिंह : सर्प ! कैसे सर्प ?

पन्ना : तुम नहीं समझोगे, कुँवर ! जाकर सो जाओ। थक गये होगे। भोजन के लिए मैं जगा लूँगी।

उदयसिंह : नहीं माँ, आज न मैं भोजन करूँगा और न अपनी शैया पर ही सोऊँगा। (प्रस्थान के लिए उद्यत)

पन्ना : (रोकते हुए) सुनो, सुनो कुँवर !

[उदयसिंह का प्रस्थान]

पन्ना : चले गये ! कुँवर का रूठना भी मुझे अच्छा लगता है। मना लूँगी। नाच, गान, दीप-दान ! इसी से चित्तौड़ की रक्षा होगी ? चित्तौड़ में यह बहुत हो चुका। बहुत हो चुका ! और अब तो बनवीर का राज्य है।

[नूपुर-नाद करते हुए एक किशोरी का प्रवेश]

किशोरी : धाय माँ को प्रणाम।

पन्ना : कौन ?

किशोरी : मैं हूँ, सोना ! रावल सरूप सिंह की लड़की। कुँवर जी कहाँ हैं !

पन्ना : वे थक गये हैं। सोना चाहते हैं।

सोना : सोना चाहते हैं। तो मैं भी तो सोना हूँ !

(अट्टहास)

पन्ना : चुप रह सोना ! कुँवर जी रूठ कर सोने चले गये हैं। तुम लोग कुँवर को नाच-गाने की ओर खींचना चाहती हो ?

सोना : क्या तुलजा भवानी के सामने नाचना कोई बुरी बात है ? आज हम लोगों ने दीप-दान किया और मनभर कर नाचा। यों (नाचती है।) कुँवर जी भी तो बड़ी देर तक हमारा नाच

देखते रहे ! मैं भी उनको देख कर बहुत नाची । उनको हमारा नाच बहुत अच्छा लगा । बहुत अच्छा ! देखो, पैरों की यह ताल (नूपुर की झनकार)

पन्ना : बस बस, सोना ! अगर तू रावल जी की लड़की न होती तो…

सोना : कटार भोंक देतीं ! कटार ! (अट्टहास करती है ।) धाय माँ, तुमने उदयसिंह के सामने तो अपने पुत्र चन्दन को भी भुला दिया । तुम्हारे मातृत्व में उदयसिंह ऐसे समाये हैं, जैसे कटार को अपने हृदय में रखने के लिए म्यान ने अपना हृदय खोखला कर दिया हो ! (हँसती है) खोखला ! !

पन्ना : यह कविता रहने दे ! जानती नहीं बनवीर का राज्य है !

सोना : ओहो, बनवीर ! उन्हें श्री महाराजा बनवीर कहो । बागड़ के इलाके से वे हाथी-घोड़ों की झूल लाये थे…हाँ, झूल ! इतनी बड़ी । हमारे लिए भी तो वे एक रेशम की झूल लाये थे । उन्हें सिर से ओढ़ कर नाचने से ऐसा लगता था, ऐसा लगता था, जैसे मकड़ी के जाले के आर-पार चन्द्रमा की किरणें थिरक रही हैं । हाँ…

पन्ना : बहुत नाचती हो, बनवीर की तुम पर बड़ी कृपा है !

सोना : द्रौपदी के चीर की तरह ? आज प्रातःकाल उन्होंने मुझे बुलाया और कहा…धाय माँ ! तुम बुरा तो नहीं मानोगी ?

पन्ना : मैं क्यों बुरा मानूँगी ?

सोना : उन्होंने कहा, महल में धाय माँ अरावली पहाड़ बन कर बैठ गई है । अरावली पहाड़ । (हँसती है ।) तो तुम लोग बनास नदी बन कर बहो न ! खूब नाचो, गाओ । यों आज कोई उत्सव का दिन नहीं था, फिर भी उन्होंने कहा, मेरे बनवाये हुए मयूर पक्ष कुंड में दीप-दान करो । मालूम हो जैसे भव-

सागर में आत्माएँ तैर रही हों, या जैसे मेघ पानी-पानी हो गये हों और बिजलियाँ टुकड़े-टुकड़े हो गई हों !

पन्ना : बड़ी उमंग में हो आज ?

सोना : दीपकों के साथ उमंगें भी लौ देने लगी हैं, धाय माँ ! सारा जीवन ही एक दीपावली का त्योहार बन गया है ।

पन्ना : तो यही त्योहार मना रही हो तुम ?

सोना : मैं ही क्या, सारे नगर-निवासी यह त्योहार मना रहे हैं । नहीं मना रही हो, तो तुम ? धाय माँ, तुम ! ! पहाड़ बनने से क्या होगा । राजमहल पर बोझ बन कर रह जाओगी, बोझ ! और नदी बनो तो तुम्हारा बहता हुआ बोझ, पत्थर भी अपने सिर पर धारण करेंगे, पत्थर भी ! आनन्द और मंगल तुम्हारे किनारे होंगे, जीवन का प्रवाह होगा, उमंगों की लहरें होंगी जो उठने में गीत गायेंगी, गिरने में नाच नाचेंगी । गीत और नाच, धाय माँ ! गीत और नाच ! ! जैसे सुख और सुहाग एक साथ हँस रहा हो ! और जब दीप-दान का दीपक अपने मस्तक पर लेकर चलोगी, धाय माँ, तो ज्ञात होगा, धाय माँ, जैसे शुक्र तारे को मस्तक पर रखकर उषा आ रही है ।

पन्ना : बनवीर के अनुग्रह ने तुम्हें पागल बना दिया है, सोना !

सोना : धाय माँ ! पागल कौन नहीं है ? महाराणा विक्रमादित्य अपने सात हजार पहलवानों के साथ पागल हैं । मल्ल-क्रीड़ा ही तो उनका पागलपन है ! महाराज बनवीर, महाराणा विक्रमादित्य की आत्मीयता से पागल हैं । वे विक्रमादित्य के अन्तःपुर में प्रलाप करते हैं । यह आनन्द ही उनका पागलपन है ! सारा नगर आज के त्योहार में पागल है । तुम कुँवर उदयसिंह के स्नेह में पागल हो और मैं ? (हँसकर) मेरी कुछ न पूछो, धाय

माँ ! मैं तो इन सबके पागलपन में पागल हूँ ! तुम चाहे जो कहो ! हाँ, तो कुँवर उदयसिंह कहाँ हैं !

पन्ना : कुँवर उदयसिंह को छोड़ो, सोना ! वे बहुत थक गये हैं। अब सो रहे होंगे। तुम जाओ। यहाँ कहीं तुम्हारा पागलपन कम न हो जाय !

सोना : मेरा पागलपन ? धाय माँ, पागलपन कहीं कम होता है ? पहाड़ बढ़ कर कभी छोटे हुए हैं ? नदियाँ आगे बढ़ कर कभी लौटी हैं ? फूल खिलने के बाद कभी कली बने हैं ? सब आगे बढ़ते हैं। नहीं बढ़ती हो तो सिर्फ तुम। सदा एक-सी। तुम्हारा पागलपन भी सदा एक-सा। मैं रावल की बेटी हूँ, शायद सामन्त की बेटी बनूँ, शायद महाराजा की बेटी बनूँ ! कुछ बढ़ कर ही बनूँगी। और तुम धाय माँ ? सिर्फ धाय माँ ही रहोगी !

पन्ना : सोना ! मुझे किसी से ईर्ष्या नहीं है। मैं जैसी हूँ अच्छी हूँ। राजसेवा में जीवन जा रहा है—यही मेरे भाग्य की बात है।

सोना : भाग्य ! भाग्य तो सबके होता है, धाय माँ ! ये नूपुर मेरे पैरों में पड़े हैं तो इनका भी भाग्य है। मेरे पैरों की गति में गीत गाते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। मेरे आगमन का संदेश पहले ही पहुँचा देते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। और जब मेरे पैर रुक जाते हैं, तो ये मौन हो जाते हैं। वह भी इनका भाग्य है। भाग्य तो सबके होता है, धाय माँ ! तुम नगर के उत्सव में भाग नहीं ले रही हो, न लो ! महाराज बनवीर का साथ नहीं दे रही हो, न दो ! मैं कौन होती हूँ बीच में बोलने वाली !

पन्ना : तो क्या मेरे उत्सव में जाने और न जाने का सम्बन्ध बनवीर की इच्छा से है ?

सोना : फूल कुछ कहता है ? अपनी सुगन्धि भेज देता है। दीपक कोई संदेश भेजता है ? पतंगे आप-से-आप आ जाते हैं।

पन्ना : मैं जानती हूँ इस दीपक की आग में मैं जल जाऊँगी !

सोना : तो कुँवर को भेज देतीं। उनको तो कोई आग न छू सकती ?

पन्ना : कैसे भेज देती ? इतने आदमियों के बीच उसे कैसे भेज देती ? महाराज सांगा के वंश के एक वही तो उजाले हैं। महाराणा रतनसिंह तीन ही वर्ष राज करके सूर्यलोक चले गये। विक्रमादित्य भी बनवीर की कूटनीति से अधिक दिनों तक···

सोना : धाय माँ, तुम विद्रोह की बातें करती हो।

पन्ना : आँधी में आग की लपट तेज ही होती है, सोना ! तुम भी उसी आँधी में लड़खड़ाकर गिरोगी। तुम्हारे ये सारे नपुर बिखर जायेंगे। न जाने किस हवा का झोंका तुम्हारे इन गीत की लहरों को निगल जायेगा। यह सुख और सुहाग पास-पास उठे हुए दो बुलबुलों की तरह बिना सूचना दिये फूट जायेगा। चित्तौड़ राग-रङ्ग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहाँ आग की लपटें नाचती हैं, सोना जैसी रावल की लड़कियाँ नहीं !

सोना : (क्रोध से चीखकर) धाय माँ !

पन्ना ? तोड़ो ये नूपुर ! बनवीर की आग की कलियों ! तुम्हारे पीछे काली राख है—यह मत भूल जाना। ये अतृप्त इच्छाओं की चिनगारियाँ अधजली होकर चिटकेंगी और चित्तौड़ की आंखों में किरकिरी बनकर कसकेंगी। यह आग की ज्वाला हवनकुण्ड को भी जला देगी, सोना ! इसे बुझा दो। तुम्हारे इस त्योहार से चित्तौड़ परिचित नहीं है। यहाँ का त्योहार आत्म-बलिदान

है। यहाँ का गीत मातृभूमि की वन्दना का गीत है। उसे सुनो और समझो।

सोना : (शान्त स्वर में) समझ लिया, धाय माँ।

पन्ना : तो यहाँ से जाओ। देखना, इस त्योहार के पीछे कोई कूटनीति न हो। बनवीर से पूछना, इस रास-रंग का क्या अर्थ है?

सोना : वह मेरी समझ में नहीं आवेगा, धाय माँ!

पन्ना : तो जाओ, दिशाओं की तरह उसकी हँसी में डूबी रहो। तुमसे प्रतिध्वनि भी न निकल सके।

[सोना का धीरे-धीरे प्रस्थान। उसके नूपुर धीरे-धीरे बजते हुए दूर तक सुन पड़ते हैं।

पन्ना : अँधेरी रात! यह रास-रंग!! नगर के सब लोगों का जमाव!! कुँवर उदयसिंह के लिए बुलावा!!! यह सब क्या है?

[चन्दन का प्रवेश]

चन्दन : (दूर से पुकारते हुए) माँ! माँ!

पन्ना : क्या, मेरे लाल?

चन्दन : माँ! इतनी कविता बनाने वाली, इतने गीत गाने वाली, इतना नाचने वाली सोना धीरे-धीरे कैसे जा रही थी? गुम-सुम, जैसे किसी ने साँप का जहर खींच लिया हो!

पन्ना : साँप का जहर?

चन्दन : हाँ जहरीली तो है ही। जब बोलती है तो बातों की ऐसी चोट करती है कि कुछ कहते ही नहीं बनता। वह तो हमेशा उछलती-कूदती जाती थी। आज तो जैसे उसके पैर में मोच आ गई हो।

पन्ना : आई थी कुँवर को बुलाने, अपना नाच दिखलाने। मैंने कुँवर को नहीं जाने दिया तो बुरा मान गई!

चन्दन : हाँ, माँ, कुछ दिनों से कुँवर हमारे साथ नहीं खेलते, इसी से यहाँ चले जाते हैं। मैं भी उनके पीछे जाता हूँ। वह कुँवर की ओर देखती है और कुँवर उसकी ओर देखते हैं। कहते तो कुछ नहीं, बस देखते हैं। पता नहीं इस तरह देखने से क्या होता है। देखने से क्या होता है, माँ!

पन्ना : कुछ नहीं, लोग देवता के दर्शन करते हैं न। तो उन्हें आनन्द मिलता है। मैं कुँवर से कह दूँगी कि वे भी देवता की तरफ देखा करें, सोना की तरफ नहीं।

चन्दन : तो सोना बुरा न मान जायगी, माँ!

पन्ना : लोगों के बुरा मानने से क्या होता है? भगवान् को बुरा नहीं मानना चाहिये। तुम तो किसी को नहीं देखते, चन्दन?

चन्दन : देखता हूँ माँ! पहाड़ी खरगोश को। ओह, कैसी छलाँग भरता है, माँ। जैसे उसमें बिजली भरी हो। पलक मारते ही पहाड़ की इस चोटी से उस चोटी पर पहुँच जाता है! पहाड़ी खरगोश से बढ़ कर और कौन-सी चीज है, माँ! उसे देखकर फिर किसी को देखने की इच्छा नहीं होती।

पन्ना : पहाड़ी खरगोश का क्या कहना है, चन्दन! उसी तरह वीरों को भी धावा करना चाहिए।

चन्दन : हाँ, मैं भी उतनी ही तेजी से दौड़ सकूँगा। जमीन से आसमान तक।

पन्ना : जमीन से आसमान तक कोई नहीं दौड़ता। हाँ, तू नाच देखने तो नहीं गया था?

चन्दन : माँ, धावा करने वाले कहीं नाच देखते हैं! मुझे तो वह अच्छा नहीं लगता। हाँ, कुँवर को अच्छा लगता है! कुँवर कहाँ हैं, माँ!

पन्ना : रूठ कर सो गये हैं।

चन्दन : क्यों, भोजन करने में ! उन्होंने भोजन कर लिया ?

पन्ना : नहीं। पर कुँवर तुम्हारे उठाने से न उठेंगे। तुम भोजन कर लो। मैं थोड़ी देर बाद उन्हें उठा कर, बहला कर भोजन करा दूँगी।

चन्दन : मुझे अकेले भोजन करना अच्छा न लगेगा, माँ।

पन्ना : भोजन कर लो, मेरे चन्दन ! मेरे लाल ! सजा ने तुम्हारे लिए अच्छा भोजन बनाया है। वह तुम्हें अच्छी-अच्छी बातें सुनाती हुई भोजन करा देगी। मैं भी अभी आती हूँ। तुम्हारी माला टूट गई थी, उसी को ठीक कर रही हूँ। बस, थोड़े दाने और रह गये हैं।

चन्दन : माँ, कल कुँवर की माला भी ठीक कर देना। वह भी टूट रही है। सोना ने उसे पकड़ कर खींच दिया था।

पन्ना : अच्छा चन्दन ! वह भी ठीक कर दूँगी।

[चन्दन का प्रस्थान]

पन्ना : (सोचते हुए) मेरा भोला लाल। जब पूछा कि तुम तो किसी को नहीं देखते तो कहता है देखता हूँ, माँ ! पहाड़ी खरगोश को। (हँसते हुए) पहाड़ी खरगोश को ! वाह रे मेरे चन्दन ! कहता है, धावा करने वाले कहीं नाच देखते हैं ! वह तो दौड़ते हैं जमीन से आसमान तक······ जमीन से आसमान तक।

[एकाएक घर की कुछ चीज़ों के गिरने की धमक। शीघ्रता से सामली का प्रवेश]

सामली : (चीखकर पुकारती हुई) धाय माँ ! धाय, माँ !

पन्ना : कौन, कौन सामली ?

सामली : (बिलखते हुए) धाय माँ, धाय माँ। कुँवर कहाँ हैं ? कुँवरजी कहाँ हैं ?

पन्ना : क्यों, कुँवरजी को क्या हुआ ?

सामली : उनका जीवन संकट में है।

पन्ना : कहाँ ? कैसे ? यह तुम क्या कह रही हो ?

सामली : उनका जीवन बचाओ। धाय माँ !

पन्ना : (चीखकर) सामली। कहाँ हैं कुँवरजी।

[अन्दर की तरफ भागती है।]

सामली : (बिलखते हुए) हाय ! सर्वनाश हो रहा है ! क्या मेवाड़ को ऐसे ही दिन देखने थे ? क्या चित्तौड़ के साके का यही फल होना था ? हाय ! क्या हो रहा है ! तुलजा भवानी ! तुम चित्तौड़ की देवी हो। कैसे कहूँ कि तुम्हारे त्रिशूल में अब शक्ति नहीं रही। मेवाड़ का भाग्य······

पन्ना : (फिर प्रवेश कर) सो रहा है। मेरा कुँवर सो रहा है। कहीं तो कुछ नही हुआ। कुँवरजी रूठ गये थे वे तलवार लिए हुए भूमि पर ही सो गये। तलवार उनके हाथो से खिसक गई है पर वे तो शान्ति से सो रहे हैं। मेरे कुँवर को कुछ नहीं हुआ।

सामली : कुँवर अच्छे हैं। तुलजा भवानी कुशल करें पर धाय माँ ! महाराणा विक्रमादित्यजी की हत्या हो गई !

पन्ना : (चीखकर, महाराणा की हत्या हो गई ? किसने की ?

सामली : बनवीर ने। महाराणा सो रहे थे उसने अवसर पाकर उनकी छाती में तलवार भोंक दी।

पन्ना : (चीखकर) हाय ! महाराणा विक्रमादित्यजी ! यह मैं पहले ही जानती थी ! (सिसकने लगती है।)

सामली : बनवीर ने नगर भर में आज नाच-गान का त्योहार मनवाया जिससे नगर-निवासियों का ध्यान नाच-रंग में ही रहे। मौका देखकर वह राजमहल गया। अन्तःपुर में वह आता-जाता था। किसी ने रोका नहीं। उसने महाराणा के कमरे में जाकर उनकी हत्या कर दी! सिसकियाँ लेने लगती है।)

पन्ना : (स्थिर होकर) आज कुसमय नाच-रंग की बात सुनकर मेरे मन में शंका हुई थी। इसलिए मैंने कुँवर को वहाँ जाने से रोक दिया था। सम्भव था कि कुँवर वहाँ जाते और बनवीर अपने सहायकों से कोई कांड रच देता।

सामली : इसीलिए मैं दौड़ आयी हूँ, धाय माँ लोगों ने बनवीर को कहते सुना है कि वह कुँवर उदयसिंह को भी सिंहासन का अधिकारी समझ कर जीवित रहने नहीं देगा। वह निष्कंटक राज्य करेगा। धाय माँ!

पन्ना : विलासी और अत्याचारी राजा कभी निष्कंटक राज्य नहीं कर सकता।

सामली : लेकिन रक्त से भीगी तलवार लेकर वह सीना ताने हुए अपने महल में गया है।

पन्ना : लोगों ने उसे पकड़ा नहीं? सैनिक चुपचाप देखते ही रहे?

सामली : सैनिकों को उसने अपनी तरफ़ मिला लिया है। लोग उससे डरते हैं। महाराणा विक्रमादित्य का राज्य भी तो ऐसा नहीं था कि लोग उनसे प्रेम रखते? उनके पहलवानों की सहायता से राज्य नहीं चल सकता। सभी सामन्त महाराणा से असन्तुष्ट थे।

पन्ना : अब क्या होगा?

सामली : थोड़ी देर बाद ही वह कुँवरजी को मारने आयेगा। आज की

रात बहुत अँधेरी है। आज की रात में ही वह अपने को पूरा महाराणा बना लेना चाहता है। किसी तरह से ही कुँवरजी की रक्षा होनी चाहिए, धाय माँ।

पन्ना : कुँवरजी की रक्षा···(सोचते हुए) कुँवरजी की रक्षा! अवश्य होगी···अवश्य होगी। अब मेवाड़ का उत्तराधिकारी एक यही तो राजपूत-रक्त है। दासी-पुत्र बनवीर को चित्तौड़ सहन नहीं कर सकेगा।

सामली : यह तो आगे की बात है पर तुम कुँवरजी की रक्षा किस तरह करोगी?

पन्ना : मैं? मैं इस अँधेरी रात में ही उसे लेकर कुँभलगढ़ भाग जाऊँगी।

सामली : और चन्दन कहाँ रहेगा?

पन्ना : जहाँ भगवती तुलजा उसे रक्खेंगी, मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान् है। नमक से रक्त बनता है। रक्त से नमक नहीं।

सामली : धन्य हो, धाय माँ! पर तुम अँधेरी रात में नहीं भाग सकोगी।

पन्ना : क्यों? अँधेरी रात में मुझे कौन जानेगा? कौन पहिचानेगा? तुम महलों से निकल भी न सकोगी। आते समय मैंने देखा था कि बनवीर के सैनिक तुम्हारा महल घेरने को आ रहे थे। एक ओर से तो तुम्हरा महल घिर ही चुका था।

पन्ना : हा! भगवान् एकलिंग! अब क्या होगा?

सामली : जैसे भी हो कुँवरजी की रक्षा तुम्हें करनी ही है।

पन्ना : मुझे सैनिकों की सहायता नहीं मिल सकती है?

सामली : सैनिक तो उसके हैं, धाय माँ।

पन्ना : और सामन्त।

सामली : उनमें अभी इतना साहस नहीं है।

पन्ना : तब मैं स्वयं तलवार लेकर कुँवर की रक्षा करूँगी। भैरवी बन कर युद्ध करूँगी। मरते-मरते मैं उसकी तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगी। उसके और मेरे कुँवर के बीच में मेरे खून का समुद्र लहराएगा जिसे वह इस जीवन में पार भी न कर सकेगा।

सामली : उसके साथ सैनिक भी हो सकते हैं, धाय माँ! युद्ध में तुम्हारे प्राण जायेंगे और कुँवरजी भी न बचेंगे।

पन्ना : तो फिर क्या करूँ ? सामली ! घुटने टेककर कुँवर की जीवन-भिक्षा माँगूँगी। बनवीर मनुष्य है। उसके मन में कुछ तो दया होगी।

सामली : राजा को हत्या करने के बाद दासी-पुत्र मनुष्य है ? वह जंगली पशु से भी गया-बीता है।

पन्ना : फिर मेरे कुँवर कैसे बचेंगे ? कैसे बचेंगे मेरे कुँवर !

[सिसकी]

सामली : इसका उपाय मैं क्या बताऊँ, धाय माँ! मैं तो महल की एक परिचारिका हूँ। मैं क्या कहूँ ! पर इतना कहे जाती हूँ कि वह क्रूर और अत्याचारी बनवीर आता ही होगा। सर्प की तरह उसकी भी दो जीभें हैं जो एक रक्त से नहीं बुझेंगी। उसे दूसरा रक्त भी चाहिए। और वह कुँवर का···तुम कुछ बोल नहीं रही हो धाय ! आँखें बन्द कर क्या सोच रही हो ?

पन्ना : भगवती तुलजा का ध्यान कर रही हूँ कि वे मुझे शक्ति दें कि मैं कुँवर की रक्षा कर सकूँ।

सामली : इस समय कुँवर की रक्षा शक्ति से नहीं हो सकेगी। कोई युक्ति ही काम दे सकती है (चौंक कर) कौन आ रहा है ?

पन्ना : (जोर से) दरवाजे पर कौन है ?

[कीरत बारी का प्रवेश]

कीरत : अन्नदाता ! कीरत बारी हौं। धाय माँ के चरन लागों।

पन्ना : कीरत ! तुम हो ? आ गये ? बाहर तो कोई नहीं है ?

कीरत : अन्नदाता ! बाहर सिपाहियों का डेरा लग रहा है। जान नहीं पड़ता अन्नदाता कै आधी रात कौ जे का हो रहा है। पैंडे में किसी का भी पैसारा नहीं हो पाता। मैं तो बारी हौं इससे कोई कुछ बोला नहीं।

पन्ना : तो तुम बेखटके चले आये ?

कीरत : अन्नदाता ! मैं तो जूठी पत्तल उठाता हूँ। कोई मालमता तो मेरे पास है नहीं। टोकनी है और उसमें पत्ते हैं। कुँवर जू ने व्यारू कर ली धाय माँ ? मैं जूठन पा लूँ।

पन्ना : नहीं।

कीरत : कुँवर जू जुग-जुग जिएँ धाय माँ ! जब से कुँवर जू बूँदी से आये हैं तब से सगर महल में उजियारा फैल गया है। राना विक्रमाजीत जब हर भजन करेंगे तो धाय माँ, अपना चौंर छतर कुँवर जू को ही तो सौंपेंगे। और जब कुँवर जू राना होयेंगे तो सगर जहान उनको बन्दगी करने आयेगा। सच जानो धाय माँ ! कुँवर जू के सरूप दर्शन दाखिल हैं। मैं तो उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हूँ। (ठहर कर) धाय माँ, कुछ सोच रही हैं ?

पन्ना : (चौंककर) ऐं ! हाँ, मैं सोच रही हूँ (सामली से) तुम बाहर जाके देखो सिपाही कहाँ-कहाँ खड़े हैं और कितने सिपाही हैं।

सामली : बहुत अच्छा। धाय माँ ! मैं जाती हूँ। (प्रस्थान)

पन्ना : तो कीरत ! तुम कुँवरजो को बहुत प्यार करते हो !

कीरत : अन्नदाता ! प्यार कहने में जबान पर कैसे आवे ? वो तो दिल की बात है। मौके पै ही देखा जाता है। और कहने को तो मैं कही चुका हूँ कि उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हौं !

पन्ना : जान तक हाजिर कर सकते हो ?

कीरत : ऐसी बातों में तीन तिर बाचा नई हराते, धाय माँ ! मौके पै ही देखा जाता है।

पन्ना : तो वह मौका आ गया है, कीरत !

कीरत : मौका ! कैसा मौका ?

पन्ना : कुँवरजी को बचाने का।

कीरत : कौन के सिर पै भैरू बाबा की आँख चढ़ी है जो कुँवरजी का बाल भी बाँका कर सके ? और कीरत के रहते ? धाय माँ, हँसी तो नहीं कर रही हैं ? अन्नदाता !

पन्ना : नहीं कीरत, हँसी का समय नहीं है। कुँवरजी के प्राण संकट में हैं।

कीरत : कौन है जिसने सूरज पै धूर उछाली है ?

पन्ना : बनवीर।

कीरत : अरे, वो बनवीर जो महाराना विक्रमाजीत के दरबार में बन्दर सरीखा नाचता है ?

पन्ना : बहुत बातों का समय नहीं है, कीरत ! बोलो कुँवरजी को बचाओगे ?

कीरत : तो मैं तलवार ले आऊँ !

पन्ना : तलवार लाने का समय नहीं है। इस समय लड़ने से काम नहीं चलेगा एक तरकीब करना होगा।

कीरत : हुकुम दें, अन्नदाता !

पन्ना : भवानी तुलजा ने मेरे मन में सब उपाय सुझा दिये हैं।

कीरत : हाँ, ध्यान तो कर रही थीं आँख मूँद के ! तो भवानी ने कौन सा हुकुम करा ?

पन्ना : उसे मानोगे ?

कीरत : अन्नदाता, सिर माथे। सिर चढ़ा के मानूँगा।

पन्ना : अच्छा, तो सुनो। तुम बारी हो। तुम्हें बाहर जाने से कोई नहीं रोकेगा। तुम तो टोकरी में जूठी पत्तल उठा के जाते ही हो।

कीरत : ठीक कहती हैं, अन्नदाता ! आते वक्त भी किसी ने नहीं रोका।

पन्ना : तो तुम कुँवर जी को टोकरी में लिटाकर उन पर गोली पत्तलें डाल कर महल से बाहर निकल जाओ।

कीरत : वाह ! अन्नदाता ने खूब सोचा ! खूब सोचा ! मैं ऐसे निकल जाऊँगा कि सिपाही लोग मुँह देखते ही रह जायेंगे। तो कुँवर जी कहाँ हैं ?

पन्ना : सो रहे हैं। आज भूमि पर ही सो गये। उन्हें धीरे से उठाकर अपनी टोकरी में सुला लेना। वे जागने न पावें।

कीरत : अन्नदाता ! उनको पता भी नहीं चलेगा कि वे कहाँ से कहाँ सो रहे हैं।

पन्ना : (गहरी साँस लेकर) चितौड़ का राजकुमार पत्तल ओढ़ के सोयेगा। कौन जानता था !

कीरत : यह सब भाग की बात है, अन्नदाता ! आज पत्तल ओढ़ के सोयेंगे कल साल-दुसाला ओढ़ेंगे।

पन्ना : तो तुम जाओ, जल्दी करो।

कीरत : बहुत अच्छा, अन्नदाता ! कुँवरजी कहाँ हैं ?

पन्ना : मेरे कमरे में नीचे ही सो गये हैं। तुम उन्हें उठा के तो ले जा सकोगे।

कीरत : अन्नदाता ! अगर हुकुम दें तो बनवीर तक को सिर पै उठा के ले जा सकता हूँ।

पन्ना : ठीक है। तुम्हारी टोकरी तो काफी बड़ी है।

कीरत : अन्नदाता ! आपके जस ने ही तो मेरी टोकरी बड़ी कर दी है। सारे राजमहल की पत्तलें छोटी टोकरी में कैसे आ सकती हैं ? और अन्नदाता ! आज तो बनवीर के साथ बहुत सामन्तों ने खाया है। मैंने भी सोचा आज बड़ी टोकरी ले चलूँ। सो वो ही लाया हूँ।

पन्ना : तो चलो, मैं तुम्हारी मदद कर दूँ !

कीरत : अन्नदाता ! आप तकलीफ न उठायें। मैं सब कर लूँगा।

पन्ना : और हाँ, कुँवरजी को लेकर तुम बेरिस नदी के किनारे मिलना। वहाँ जहाँ श्मशान है।

कीरत : ठीक है, अन्नदाता ! वहीं मिलूँगा। वहाँ मुझ पै किसी भी आदमी की नजर न पड़ेगी।

पन्ना : तो जाओ कीरत ! आज तुम जैसे एक छोटे आदमी ने चित्तौड़ के मुकुट को सम्हाला है। एक तिनके ने राजसिंहासन को सहारा दिया है। तुम धन्य हो !

कीरत : अन्नदाता ! धन्य तो आप हैं कि मुझको आपने ऐसी सेवा करने का काम सौंपा है। तो मैं चलूँ ?

[सामली का प्रवेश]

सामली : धाय माँ ! महल चारों तरफ सिपाहियों से घिर गया ! उत्तर की तरफ ही सात सिपाही हैं, बाकी तीनों तरफ बीस-बीस सिपाही पहरा दे रहे हैं। शायद उत्तर की तरफ के सिपाही बनवीर को लेने गये हैं।

पन्ना : कोई चिन्ता की बात नहीं। सामली ! तुम यहीं ठहरना मैं अभी आती हूँ।

सामली : देख के क्या करोगी ? मैं तो देख आयी हूँ। कुँवर को बचाने का कोई उपाय सोचो।

पन्ना : मैं अभी आती हूँ। (कीरत से) चलो कीरत !

[दोनों का प्रस्थान]

सामली : न जाने धाय माँ क्या सोच रही हैं ! कीरत बारी भी तब से यहीं बना है। क्या होगा ? हाय ! बनवीर ने महाराणा को रक्त में नहला दिया। दुष्ट बनवीर !······तुझे नर्क में भी चैन न मिलेगा। कुँवर उदयसिंह पर आँख लगाई है। भवानी ! कुँवर की रक्षा करो ! रक्षा करो······!

[पन्ना का प्रवेश]

पन्ना : अब ठीक है। कुँवर की रक्षा हो गयी।

सामली : (प्रसन्नता से) हो गयी ! हो गयी ! हो गयी ! कैसे ?

पन्ना : कीरत ने अपनी टोकरी में कुँवर को सुला दिया। ऊपर से पत्तलें ढक लीं और उन पर पानी छिड़क दिया। वह उन्हें लेकर बेखटके महल से बाहर हो जायगा। कोई उससे कुछ पूछेगा भी नहीं। कुँवर जी बच गये ! कुँवर जी बच गये !

सामली : वाह, वाह, धाय माँ ! बहुत अच्छा सोचा, बहुत अच्छा सोचा। सिपाही समझेंगे कि कीरत बारी जूठी पत्तलें ले जा रहा है। कोई इससे कुछ पूछेगा भी नहीं। कुँवर जी बच गये ?

पन्ना : चित्तौड़ के भाग्य से ही वे बचेंगे।

सामली : जरूर बचेंगे। पर धाय माँ ! यह सब तुम्हें किसने सुझाया ?

पन्ना : भवानी ने। मैंने आँख बन्द कर उनका ध्यान किया। उसी समय कीरत बारी आया। उसने कहा'''मैं तो जूठी पत्तल उठाता हूँ। कोई माल-मता तो मेरे पास है नहीं। टोकरी है और उसमें पत्ते हैं। बस, भवानी ने यही बात मुझे सुझा दी।

सामली : पर एक बात है, धाय माँ !

पन्ना : क्या ?

सामली : बनवीर यहाँ जरूर आयेंगे। वे तुम्हारे महल में कुँवर जी की खोज करेंगे। जब वे कुँवर जी को न पावेंगे और तुमसे पूछेंगे तो तुम क्या उत्तर दोगी ?

पन्ना : कह दूँगी कि मैं नहीं जानती।

सामली : इससे वे नहीं मानेंगे। क्रोध में आकर अगर उन्होंने तुम्हारे ऊपर तलवार चला दी तो कुँवर जी तुम्हारे बिना कैसे जिएँगे ?

पन्ना : मैं अपने प्राणों की भिक्षा माँगूँगी जो चित्तौड़ की किसी नारी ने नहीं माँगी। ऐसी विचित्र भिक्षा वे अवश्य दे देंगे।

सामली : बनवीर के सिर पर खून चढ़ गया है। वह दैत्य बन गया है। कुँवर जी को न पाकर वह तुम्हें जरूर मार डालेगा।

पन्ना : मुझे उसकी चिन्ता नहीं है, सामली !

सामली : पर चिन्ता कुँवर जी की है। तुम्हारे बिना वे भी तो जीवित नहीं रहेंगे। फिर तुम्हारा बलिदान चित्तौड़ के किस काम आयेगा। कुँवर जी को तो जीना ही चाहिये।

पन्ना : सचमुच कुँवर जी मेरे बिना नहीं जियेंगे। थोड़ी-सी बात पर तो रूठ जाते हैं। मुझे न पाकर उनका क्या हाल होगा !

सामली : किसी तरह बनवीर को धोखा नहीं दे सकतीं ?

पन्ना : दे सकती हूँ।

सामली : किस तरह ?

पन्ना : कुँवर जी की शैया पर किसी और को सुला दूँगी। वह क्रोध में अन्धा रहेगा ही। पहिचान भी नहीं सकेगा कि यह कौन सोया है।

सामली : तो कुँवर जी की शैया पर किसे सुला दोगी ?

पन्ना : किसे सुला दूँगी। (सोच कर) सामली ! मेरे हृदय पर वज्र गिर रहा है। मेरी आँखों में प्रलय का बादल घुमड़ रहा है। मेरे शरीर के एक-एक रोम पर बिजली तड़प रही है।

सामली : धाय माँ ! सम्भल जाओ। ऐसी बातें न कहो। कुँवर की शैया पर······

पन्ना : सुला दूँगी। उसी को ! उसी को सुला दूँगी जो मेरी आँखों का तारा है·········चन्दन !·········चन्दन को सुला दूँगी, सामली (सिसकियाँ) चन्दन को सुला दूँगी। उस नन्हें-से लाल को हत्यारे की तलवार के नीचे रख दूँगी। कह दूँगी कि इसके नन्हें-से कलेजे पर हलकी-सी चोट करना। बेचारा अभी बालक है। भीषण प्रहार से मेरा लाल चौंक उठेगा।

सामली : धाय माँ ! धाय माँ ! ऐसा मत कहो। ऐसा मत कहो। ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी। महल के किसी कोने में छिप रहूँगी। हाय ! तुम क्या कह रही हो ! ऐसा मत करना, धाय माँ ! ऐसा मत करना। मैं जाती हूँ ! ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी···ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी (प्रस्थान)।

पन्ना : चली गई। कहती है, ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी। जो मुझे करना है, वह सामली सुन भी न सकेगी। भवानी ! तुमने मेरे

हृदय को कैसा कर दिया ! मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूँ। अपने लाल को दे सकूँ। यही राजपूतनी का व्रत है। यही राजपूतनी की मर्यादा है। यही राजपूतनी का धर्म है। मेरा हृदय वज्र का बना दो ! माता के हृदय के स्थान पर पत्थर रख दो जिससे ममता का स्रोत बन्द हो जाये। भवानी ! मैं चित्तौड़ की सच्ची नारी बनूँ। खीची राजपूतनी अपने रक्त से मंगल-तिलक करे। (नेपथ्य में चन्दन का स्वर) माँ !...माँ !...माँ !

[चन्दन का प्रवेश]

चन्दन : माँ ! देखो, मेरे पैर में चोट लग गई। यह रक्त निकल रहा है।

पन्ना : कहाँ रक्त निकल रहा है ? लाओ, देखूँ मेरे लाल ! ओहो ! अँगूठे में यह चोट कैसे लगी ? रक्त निकल रहा है। कितना रक्त निकल रहा है। लाओ। इसे बाँध दूँ। (अपनी साड़ी से कपड़े का टुकड़ा फाड़ती है।) सीधा पैर करो ! हाँ ठीक इसे बाँध देती हूँ। (बाँधते हुए) यह चोट कैसे लगी, लाल !

चन्दन : मैं जैसे ही भोजन करके उठा माँ ! सज्जा ने कहा कि महल के चारों तरफ सिपाही इकट्ठे हो रहे हैं। मैं देखने के लिए ऊपर के झरोखे में चढ़ गया। अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं दिया। जैसे ही मैं नीचे कूदा एक टूटा हुआ शीशा अँगूठे में चुभ गया। कोई बात नहीं है, माँ ! रक्त तो निकला ही करता है। पर ये सिपाही महल के चारों तरफ क्यों इकट्ठे हो रहे हैं ?

पन्ना : आज नाच-रंग का दिन है न ? वही सब देखने के लिए आये होंगे। या फिर सोना ने उन्हें बुलाया होगा। वह नीचे नाच रही होगी।

चन्दन : माँ ! सोना अच्छी लड़की नहीं है । मैं कल उससे कहूँगा माँ, कि कुँवर जी को अपना नाच न दिखाया करे । उनका मन आखेट करने में नहीं लगता ।

पन्ना : मैं भी उसे समझा दूँगी, चन्दन !

चन्दन : कुँवर जी कहाँ हैं, माँ ! आज भोजन में भी साथ नहीं चले ।

पन्ना : कहीं सो रहे होंगे ।

चन्दन : तब से वे सो ही रहे हैं ? माँ, कुँवर जी को ज्यादा नींद क्यों आती है ? मैं देखूँ, कहाँ सो रहे हैं ।

पन्ना : बुरा मान कर कहीं सो रहे होंगे ।

चन्दन : सोना ने ही उन्हे बुरा मानना सिखला दिया, माँ ! नहीं तो कुँवर जी पहले कभी बुरा नहीं मानते थे । खेल-खेल में भी बुरा नहीं मानते थे । साथ खेलते थे, साथ खाते थे । आज अकेले कुछ खाया भी नहीं गया, माँ ।

पन्ना ; तो चलो चन्दन ! मैं तुम्हें जी भर के खिला दूँ !

चन्दन : अब कुँवर जी के साथ कल खाऊँगा, माँ । कल हम दोनों साथ बैठेंगे तुम प्रेम से परोस-परोस कर खिलाना । कल खूब खाऊँगा, माँ ! कुँवर जी से भी ज्यादा । कहते हैं कि मैं चन्दन से ज्यादा खाता हूँ । अब कल से यह कहना भूल जायेंगे । (हँसता है ।) क्यों न माँ !

पन्ना : ठीक है, लाल !

चन्दन : माँ ! अच्छी तरह से क्यों नहीं बोलती ! और तुम्हारी आँखें । तुम्हारी आँखों में पानी कैसा ? माँ ! ऐं···तुम्हारी आँखों में ।

पन्ना : कहाँ चन्दन ! पानी कहाँ ? और तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धार बहे, मेरी आँखों से एक बूँद पानी भी न निकले ?

चन्दन : ओह ! माँ, तुम तो बातें करने में बड़ी अच्छी हो। जब मैं बड़ा होकर बहुत सी जागीरें जीतूँगा, माँ ! तो मैं तुम्हारे लिए एक मन्दिर बनवाऊँगा। देवी के स्थान पर तुमको बिठलाऊँगा और तुम्हारी पूजा करूँगा। तुम अपनी पूजा करने दोगी ?

पन्ना : तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है, चन्दन !

चन्दन : यह मत समझना माँ ! कि मैं जागीरें नहीं जीत सकता। उस जंगली खरगोश की तरह तेजी से दौड़ सकता हूँ। आसमान तक धावा बोल सकता हूँ।

पन्ना : अब बहुत बातें न करो, चन्दन ! रात अधिक हो रही है, सो जाओ।

(कुछ आहट होती है)

चन्दन : माँ, माँ, देखो, उस दरवाजे से कौन झाँक रहा है ?

पन्ना : कीरत बारी होगा। तुम्हारा भोजन उठाने आया होगा। मैं देखती हूँ। (उठकर देखती है।)

चन्दन : कोई और हो तो मैं अपनी तलवार लाऊँ !

पन्ना : (लौटती हुई) कोई नहीं है। महल में किसका डर है ? लाल ! तुम सो जाओ !

चन्दन : कहाँ सोऊँ ! सज्जा तो अभी रसोई घर में ही होगी। मेरी शैया ठीक न की होगी।

पन्ना : तो, तो, तो तुम कुँवर जी की शैया पर सो जाओ। शैया ठीक होने पर तुम्हें उस पर लिटा दूँगी।

चन्दन : और कुँवर जी बुरा मान गये तो ?

पन्ना : मैं कुँवर जी को समझा दूँगी। तुम्हारे लेटने से कुँवर जी की शैया मैली तो हो न जायगी।

चन्दन : तुम बहुत अच्छी हो, माँ ! आज कुँवर जी की शैया पर लेट कर देखूँ ! अब तो मैं भी राजकुमार हो गया ! (एकाएक स्मरण कर) पर मेरी माला ! राजकुमार के गले में माला होती है न ! तुमने मेरी टूटी माला गूँथ दी !

पन्ना : नहीं गूँथ पायी लाल ! सामली आ गई थी ।

चन्दन : कल गूँथ देना । भूलना नहीं, माँ । (शैय्या पर लेटता है ।) आहा माँ ! कितनी नरम शैया है ! जी होता है, सदा इसी पर सोता रहूँ ।

पन्ना : (चीखकर) चन्दन !

चन्दन : क्या हुआ माँ !

पन्ना : कुछ नहीं, कुछ नहीं । आज मेरा जी कुछ अच्छा नहीं है । कभी-कभी कलेजे में शूल-सी उठती है । तुम सो जाओ तो मैं भी सो जाऊँगी ।

चन्दन : मैं किसी वैद के यहाँ जाऊँ माँ !

पन्ना : नहीं वैद्य के पास इसकी दवा नहीं है । यह आप-से-आप उठती है और आप-से-आप शान्त हो जाती है । तुम सो जाओ...मैं भी कुँवर को खिलाकर जल्दी सो जाऊँगी ।

चन्दन : अच्छा माँ ! तुम्हारी आज्ञा नहीं टालूँगा । लो मैं आँखें बन्द कर लेता हूँ ।

पन्ना : सो जाओ ! चित्तौड़ की अच्छी कहानियों को सोचते-सोचते सो जाओ ! अपनी मातृभूमि में कितने बड़े-बड़े वीर हुए हैं । बापा रावल जिन्हें हारीत ऋषि ने दर्शन दिये, जिन्होंने मेवाड़ की नींव डाल कर विदेशों पर चढ़ाई की और उन्हें जीता । इन्होंने ही पहले पहल अपने आराध्य देव एकलिंग का मन्दिर बनवाया । राजा नरवाहन जिन्होंने अपनी अकेली शक्ति से अनेक शत्रुओं को पराजित किया । राजा हंसपाल जिन्होंने अनेक राज्य

जीत कर अपने राज्य में मिलाये। रावल सामन्त सिंह जिन्होंने गुजरात के सोलंकी राजा उदयपाल को युद्ध में पराजित किया। रावल जय सिंह, रावल समर सिंह।

चन्दन : (चौंककर) माँ, मैं आँखें बन्द कर तुम्हारी बातें सुन रहा था, कि एक काली छाया मेरे सिर के पास आई और उसने मुझे मारने को तलवार उठाई! माँ वह काली छाया काली छाया!

पन्ना : मैं तो तुम्हारे पास बैठी हूँ, लाल! यहाँ कौन-सी काली। छाया आयेगी?

चन्दन : कोई छाया नहीं आयेगी माँ! पर न जाने क्यों नींद नहीं आ रही है। तुम मुझे कोई गीत सुना दो तो सुनते-सुनते सो जाऊँ।

पन्ना : अच्छी बात है, मेरे लाल! मैं गीत ही गाऊँगी। अपने लाल को सुला दूँ!

[करुण स्वर में गीत गुनगुनाती है।]

उड़ जा रे पँखेरुआ, साँझ पड़ी।
चार पहर बाटड़ली जोही॥
मेड्याँ खड़ी ए खड़ी।
उड़ जा रे पँखेरुआ, साँझ पड़ी॥
डबडब भरिया नैन दिरिघड़ा।
लग रयी झड़ी ए झड़ी।
उड़ जा रे पँखेरुआ, साँझ पड़ी॥
तेरी फिकर हूँ भयी दिवानी।
मुसकल घड़ी ए घड़ी, उड़ जा रे पँखेरुआ०…

[धीरे-धीरे गान समाप्त होता है।]

पन्ना : (फिर पुकारती है) चन्दन !

[चन्दन के न बोलने पर पन्ना अलग हट कर जोर से सिसकी लेती है ।]

पन्ना : मेरा लाल सो गया ! मैंने अपने लाल को ऐसी निद्रा में सुला दिया कि अब यह न उठेगा । (सिसकियाँ लेती है ।) ओह पन्ना ! तूने अपने भोले बच्चे के साथ कपट किया है ! तूने अंगारों की सेज पर अपने फूल-से लाल को सुला दिया है । तू सर्पिणी है । सर्पिणी जो अपने ही बच्चे को खा डालती है । जान-बूझ कर अपने पुत्र की हत्या कराने जा रही है । हाय ! अभागिनी माँ ! संसार में तेरा भी जन्म होने को था ? (सिसकियाँ लेती है । फिर चन्दन को संबोधित करते हुए) लाल ! तुम्हारी माला मै नहीं गूँथ सकी । तुम्हारा जीवन अधूरा होने जा रहा है तो माला कैसे पूरी होती ? (सिसकियाँ) आज तुम भूखे ही रह गये, मेरे लाल ! आज अन्तिम दिन मैं तुम्हें अपने हाथों से भोजन भी न करा सकी ! तुम क्या जानो कि कल तुम और कुँवर साथ-साथ कैसे भोजन करोगे ! कहते थे कल तुम परोस कर खिलाना । मैं अब किसे खिलाऊँगी, चन्दन ! (सिसकियाँ) तुम बड़ी-बड़ी जागीरें जीतोगे, मन्दिर बनवाओगे, देवी के स्थान पर मुझे बिठलाओगे और मेरी पूजा करोगे ! मैं ऐसी देवी हूँ कि अपने भक्त को ही खा रही हूँ । (सिसकियाँ) तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धारा बही । अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूँगी । मेरे लाल ! मेरे चन्दन ! जाओ यह रक्तधारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो ! आज मैंने भी दीप-दान किया है । दीप-दान ! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है । ऐसा दीप-दान भी किसी ने किया है ! एक बार

तुम्हारा मुख देख लूँ। कैसा सुन्दर और भोला मुख है!
(सिसकियाँ लेती है।)

[एकाएक भड़भड़ाहट की आवाज होती है। हाथ में तलवार लिये बनवीर आता है।]

बनवीर : (मद्य पीने से उसके शब्द लड़खड़ा रहे हैं।) पन्ना!

पन्ना : महाराज बनवीर!

बनवीर : सारे राजपूताने में एक ही धाय माँ है पन्ना!! सबसे अच्छी! मैं ऐसी धाय माँ को प्रणाम करने आया हूँ। (रुककर) ऐं, धाय माँ की आँखों में आँसू!

पन्ना : नहीं···आँसू नहीं है। आज मेरे कुँवर बिना भोजन किये ही सो गये।

बनवीर : आज के दिन भोजन नहीं किया? अरे, आज तो उत्सव का दिन है। आनन्द का दिन है। (अट्टहास करता है।) मेरे महल में तीन सौ सामन्तों ने भोजन किया। आज कीरत बारी की टोकरी देखती! भोजन उठाते-उठाते वह ज़िन्दगी भर के लिए थक गया होगा। (हँसता है।) जिन्दगी भर के लिए! तो कहाँ हैं कुँवर उदयसिंह? मैं उन्हें अपने हाथ से भोजन करा दूँ!

पन्ना : कुँवर सो गये हैं। वे किसी के हाथ से भोजन नहीं करते, मैं ही उन्हें खिला दूँगी।

बनवीर : धाय माँ हो न! आज पन्ना! आज तुमने सोना का नाच नहीं देखा! ओह! कितना अच्छा नाचती है। मैंने उससे कह दिया था कि वह कुँवर उदयसिंह को और धाय माँ को अपना नाच दिखला दे।

पन्ना : वह आई थी। शायद तुम्हीं ने उसे भेजा था, पर कुँवरजी का जी अच्छा नहीं था, इसीलिए मैंने उन्हें नहीं भेजा।

बनवीर : जी अच्छा नहीं था, और आज का दीप-दान भी तुमने नहीं देखा ?

पन्ना : मेरे लिए दीप-दान देखने की बात नहीं है, करने की बात है।

बनवीर : ठीक है, धाय माँ तो मंगल-कामनाओं की देवी हैं। वे दीप-दान करके चित्तौड़ का कल्याण करेंगी। मैं भी चित्तौड़ का कल्याण करूँगा। एक बात कहूँ, पन्ना ! मैं तुम्हें मारवाड़ में एक जागीर देना चाहता हूँ। वहाँ तुम्हारे लिए तुलजा भवानी का मन्दिर बनेगा। मन्दिर ! सारे लोग तुम्हे इतनी श्रद्धा से देखेंगे कि तुलजा भवानी में और तुम में कोई अन्तर भी न होगा। तुम्हीं देवी के उस मन्दिर में रहोगी। लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।

पन्ना : (चीखकर) बनवीर !

बनवीर : (अट्टहास कर) महाराज बनवीर नहीं कहा ? मेरे कहने भर से तुम देवी हो गई ! महाराज बनवीर को बनवीर कहने लगी ! (हँसता है।) देवी को प्रणाम ! देखा, अब तुम्हें मोह-ममता से दूर रहना होगा। तुम कुँवर उदयसिंह को मुझे दे दोगी और मैं उसे यह तलवार दूँगा। (तलवार खींच लेते हैं।)

पन्ना : ऐं, यह तलवार ! इस पर रक्त क्यों लगा है !

बनवीर : रक्त तो तलवार की शोभा है, पन्ना ! वह अनन्त सुहाग से भरी है। यह तो उसके सिन्दूर की रेखा है। बिना रक्त के तलवार भी कभी तलवार कहला सकती है !

पन्ना : यह तलवार म्यान में रख लो। महाराज !

बनवीर : क्या तुम्हें भय लगता है ! चित्तौड़ में तलवार से किसी को भय नहीं लगता। धाय माँ होने पर तुममें इतनी ममता भर गई

कि तलवार नहीं देख सकती ? पन्ना ! तलवारें आसानी से म्यान के भीतर नहीं जातीं। जब म्यान में राज्यश्री भर जाती है तो तलवार बाहर निकल आती है।

पन्ना : आधीरात हो चुकी है, महाराज बनवीर ! विश्राम करो।

बनवीर : विश्राम मैं करूँ ? बनवीर ! जिसे राजलक्ष्मी को पाने के लिए दूर तक की यात्रा करनी है। मैं अपने साथ कुँवर उदयसिंह को भी ले जाना चाहता हूँ।

पन्ना : यह नहीं होगा···यह नहीं होगा, महाराज बनवीर !

बनवीर : जागीर नहीं चाहती ?

पन्ना : नहीं।

बनवीर : तो उदयसिह के बदले जो माँगो वह दिया जायगा।

पन्ना : राजपूतनी व्यापार नहीं करती, महाराज ! वह या तो रणभूमि पर चढ़ती है या चिता पर।

बनवीर : दो में से किसी पर भी तुम नहीं चढ़ सकोगी। तुम्हारा महल सैनिकों से घिरा है।

पन्ना : सैनिकों को किसने आज्ञा दी ? महाराज विक्रमादित्य···

बनवीर : (बीच ही में) वे अब इस संसार में नहीं हैं। पन्ना ! उन्होंने रक्त की नदी पार कर ली है। उसी रक्त की लहर मेरी तलवार पर है।

पन्ना : ओह बनवीर ! हत्यारा बनवीर !

बनवीर : महाराणा बनवीर को हत्यारा बनवीर नहीं कह सकती, पन्ना ! हत्यारा बनवीर कहनेवाली की जीभ काट दी जायगी।

पन्ना : तो लो मेरी जीभ काट लो। और यहाँ से चले जाओ। महाराणा विक्रमादित्य···

बनवीर : बार-बार विक्रमादित्य का नाम क्यों लेती है? प्रेतों और पिशाचों को वह नाम लेने दो। यदि मेरा नाम लेना है तो जयकार के साथ नाम लो।

पन्ना : धिक्कार है, बनवीर! तुम्हारी माँ ने तुम्हें जन्म देते ही क्यों न मार डाला।

बनवीर : चुप रह धाय! बच्चे को पालने वाली, लोरियाँ सुनानेवाली एक साधारण दासी महाराणा से बात करती है? कहाँ है उदयसिंह?

पन्ना : तू उदयसिंह को छू भी नहीं सकता। नीच नारकी! महाराणा विक्रमादित्य की हत्या के बाद तू उदयसिंह को देख भी नहीं सकता।

बनवीर : मैं नहीं देखूँगा, मेरी तलवार देखेगी। विक्रम के रक्त से सनी हुई तलवार अब उदयसिंह के रक्त से धोयी जायगी।

पन्ना : ओह क्रूर बनवीर! तुम तो उदयसिंह के संरक्षक थे। रक्षा के बदले क्या तुम उसकी हत्या करोगे। नहीं-नहीं यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता। महाराणा बनवीर। तुम राज्य करो, चित्तौड़ पर, मेवाड़ पर, सारे राजपूताने पर राज्य करो। पर कुँवर उदयसिंह को छोड़ दो। मैं उसे लेकर संन्यासिनी हो जाऊँगी। तीर्थों में वास करूँगी। तुम्हारा मुकुट तुम्हारे माथे पर रहे, पर मेरा कुँवर भी मेरी गोद में रहे। बनवीर! महाराणा बनवीर, मुझे यह भिक्षा दे दो।

बनवीर : दूर हट दासी! यह नाटक बहुत देख चुका हूँ। उदयसिंह की हत्या ही तो मेरे राजसिंहासन की सीढ़ी है। जब तक वह जीवित है तब तक सिंहासन मेरा नहीं होगा। तू मेरे सामने से हट जा!

पन्ना : मैं नहीं हटूँगी ! अपने कुँवर की शैया से दूर नहीं हटूँगी ।

बनवीर : उदयसिंह को सुला दिया है जिससे उसे मरने का कष्ट न हो । उसका मुख भी ढक दिया है ! वाह री धाय माँ ! बालक के मरने में भी ममता का ध्यान रखती है । (तीव्रता से) शैया से दूर हट, पन्ना ! मैं उसे चिर निद्रा में सुला दूँ ।

पन्ना : (साहस से) नहीं, ऐसा नहीं होगा, क्रूर नराधम, नारकी ! ले मेरे कटार का प्रसाद ले (आक्रमण करती है, उसकी चोट बनवीर की ढाल पर सुन पड़ती है ।)

बनवीर : (क्रूर अट्टहास करता है) ह ह ह ह ! दासी क्षत्राणी । कर लिया कटार का वार । यह कटार मेरे हाथ में है । अब किससे वार करेगी ? अब तुझे भी समाप्त कर दूँ ? लेकिन स्त्री पर हाथ नहीं उठाऊँगा ।

पन्ना : अबोध सोते हुए बालक पर हाथ उठाते हुए तेरा हृदय तुझे नहीं धिक्कारता ? पापी ।

बनवीर : (शैया के समीप जाकर) यही है, यही है, मेरे मार्ग का कंटक । आज मेरे नगर में स्त्रियों ने दीप-दान किया है । मैं भी यमराज को इस दीपक का दान करूँगा यमरांज ! लो इस दीपक को । यह मेरा दीप-दान है ।

[तलवार से उदय के धोखे में चन्दन पर जोर से तलवार का प्रहार करता है । पन्ना जोर से चीख कर मूर्छित हो जाती है । कमरे में मन्द लौ से दीपक जलता रहता है ।]

उपेन्द्रनाथ अश्क | तौलिये

पात्र

वसन्त	मधु
मंगला	चिन्ती

सुरो

स्थान—नयी दिल्ली

[पर्दा वसन्त के ड्राइंग-रूम में उठता है। ड्राइंग-रूम न बहुत बड़ा है, न छोटा। न सामान से अधिक भरा है, न बिलकुल खाली। वसन्त एक फर्म में मैनेजर है। अढ़ाई सौ वेतन पाता है। दिल्ली में अढ़ाई सौ अधिक महत्व नहीं रखते, पर वह फर्म का मैनेजर है, इसलिए कमरा सजा है और दरवाज़ों पर पर्दे लगे हैं। दायीं दीवार के साथ मेज़ लगी है, उस पर काग़ज़-पत्रों के अतिरिक्त टेलीफोन रखा है।

मेज़ के इधर एक दरवाज़ा है, जो अन्दर कमरे में जाता है। मेज़ के उस ओर कोने में एक अँगीठी है, किन्तु आग शायद इसमें नहीं जलती, क्योंकि अँगीठी का कपड़ा अत्यन्त सुन्दर है, उस पर सजावट की चीज़ें भी रखी हुई हैं—वैसी ही जैसी मध्यवर्गीय घरों में होती हैं—लेकिन वे बिखरी नहीं हैं, करीने से लगी हुई हैं। दो पीतल के फूलदान दूसरी वस्तुओं के अतिरिक्त अँगीठी के कपड़े की लम्बी झालर को छूता हुआ रेडियो सेट नीचे एक छोटी सी मेज़ पर रखा है, जिसके मेज़पोश का डिजाइन अँगीठी के कपड़े से मैच करता है और मधु की सुरुचि का पता देता है।

अँगीठी के ऊपर दीवार पर एक कैलेंडर ऐसे लटक रहा है कि मेज़ पर बैठे हुए व्यक्ति के ऐन सामने पड़े। कैलेंडर को एक नज़र देखने से मालूम

होता है कि १९४३ के नवम्बर का महीना है। अँगीठी के बराबर सामने दीवार में एक दरवाज़ा है जो रसोई-घर को जाता है।

इस दरवाज़े से ज़रा हटकर सामने की दीवार के साथ एक बेत के कौच का सेट है। इसके आगे एक तिपाई पड़ी है। सेट की गद्दियाँ सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हैं और तिपाई का कवर अँगीठी के कपड़े से मैच करता है।

सामने, दीवार की बायीं ओर सोफा-सेट से ज़रा हटकर एक दरवाज़ा है जो स्नानगृह को जाता है।

बायीं दीवार के साथ शृंगार की मेज़ लगी है जिससे वसन्त और मधु दोनों अपने टायलेट का काम ले लेते हैं। इसके ऊपर खूँटियों पर तौलिये टंगे हैं। मेज़ के दोनों ओर एक-दो कुर्सियाँ पड़ी हैं। बायीं ओर दीवार में इधर एक दरवाज़ा है जो बाहर को जाता है।

पर्दा उठते समय हम वसन्त को शृङ्गार की मेज़ पर बैठे हज़ामत बनाते देखते हैं। वास्तव में वह हज़ामत बना चुका है और तौलिये से मुँह पोंछ रहा है। तभी रसोई-घर से स्वेटर बुनती हुई मधु प्रवेश करती है।

मधु : यह फिर आपने मदन का तौलिया उठा लिया। मैं कहती हूँ आप ··

वसन्त : (मुँह पोंछते-पोंछते रुककर) ओह! ये कम्बख्त तौलिये! मुझे ध्यान ही नहीं रहता। बात यह है (हँसता है।) कि मदन के तौलिए छोटे हैं और...।

मधु : (चिढ़कर) हजामत के तौलिये जैसे हैं। जी! ज़रा आँख खोलकर देखिये, हज़ामत के तौलिये कितने रंगीन हैं, बीसियों धारियाँ पड़ी हुई हैं उनमें और मदन के कितने सादे और।

वसन्त : लेकिन न रोएँदार तो···।

मधु : (व्यंग्य से) दोनों हैं। जी! आँखें बन्द करके आदमी दोनों का अन्तर बता सकता है, मैं कहती हूँ···।

वसन्त : (निरुत्तर होकर) वास्तव में मेरा ध्यान दूसरी ओर था। लाओ, मुझे हजामत का तौलिया दे दो। कहाँ है? मुझे दिखायी ही नहीं दिया।

मधु : (खूँटी पर टँगा हुआ तौलिया उठाकर) यह तो टँगा है सामने फिर भी ···।

वसन्त : मैंने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया··· ।

(खिसियानी हँसी हँसता है)

मधु : जी, आप की दुनिया। जाने आप किस दुनिया में रहते हैं। अब तो ऐनक नहीं। ऐनक हो तो कौन सा आपको कुछ दिखाई देता है।

(मुँह फुलाकर धम से कौच में धँस जाती है और चुपचाप स्वेटर बुनने लगती है। वसन्त हजामत का सामान रखता है फिर अचानक उसकी ओर देखकर।)

वसन्त : यह फिर तुमने मुँह फुला लिया, नाराज़ हो गयी हो?

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) नही मैं नाराज नहीं।

वसन्त : तुम्हारा ख़्याल है कि मैं इतना मूर्ख हूँ जो यह भी नहीं पहचान सकता?

मधु : (उसी तरह हँसकर) मैं कब कहती हूँ?

वसन्त : (सामान वैसे ही छोड़कर कुर्सी को उसकी ओर घुमाते हुए) मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि अपने भावों को छिपा लेना तुम्हारे बस की बात नहीं। तुम्हारी उपेक्षा, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी समस्त भावनाएँ, तुम्हारी आकृति पर प्रतिबिम्बित हो जाती हैं, तुम्हें मेरी आदतें बुरी लगती हैं, पर मैंने तुम्हें अन्धेरे में नहीं रखा। अपने सम्बन्ध में, अपने स्वभाव के सम्बन्ध में, सब कुछ बता दिया था। मैंने अपने सब पत्ते···

मधु : मेज़ पर रख दिये थे (उसी तरह व्यंग्य से हँसकर) :मैं कब इनकार करती हूँ ?

वसन्त : तुम्हारी यह हँसी कितनी विषैली है । इसी तरह विष घोल-घोलकर तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर लिया है ।

मधु : (चुप रहती है ।)

वसन्त : मैं तुम्हें किस प्रकार विश्वास दिलाऊँ कि मैं स्वयं सफाई का बड़ा भारी समर्थक हूँ ।

मधु : (हँसती है ।) इसमें क्या सन्देह है !

वसन्त : और मुझे स्वयं गन्दगी पसन्द नहीं ।

मधु : (सिर्फ हँसती है ।)

वसन्त : पर मैं तुम्हारी तरह 'एरिस्टोक्रेटिव' (Aristocrative) वातावरण में नहीं पला और मुझे नज़ाकतें नहीं आतीं । हमारे घर में सिर्फ़ एक तौलिया होता था और हम छहों भाई उसे काम में लाते थे ।

मधु : आप मुझे 'एरिस्टोक्रेट' कहकर मेरा उपहास करते हैं । मैं कब कहती हूँ, दस-दस तौलिये हों ।

वसन्त : दस और किस तरह होते हैं ? नहाने का अलग, हजामत बनाने का अलग, हाथ-मुँह पोंछने का अलग और फिर तुम्हारे और मदन के···।

मधु : (पहलू बदलकर) लेकिन मैं पूछती हूँ, इसमें दोष क्या है ? जब हम खरीद सकते हैं तो क्यों न दस-दस तौलिये रखें । कल परमात्मा न करें हम इस योग्य न रहें तो मैं आपको दिखा दूँ, किस तरह गरीबी में भी सफाई रखी जा सकती है । तौलिये न सही, खादी के अंगौछे सही, किसी पुरानी-धुरानी, पर उजली चादर या धोती के टुकड़े सही, कुछ भी रखा जा सकता है । लेकिन जिस तौलिये से किसी दूसरे ने बदन पोंछा हो, उससे किस प्रकार कोई अपना शरीर पोंछ सकता है ?

वसन्त : मैं कहता हूँ, हम छः भाई एक ही तौलिये से बदन पोंछते रहे।

मधु : लेकिन बीमारी........!

वसन्त : हममें से किसी को कभी कोई बीमारी नहीं हुई।

मधु : लेकिन स्किन की बीमारी...

वसन्त : तुम्हें और मदन को तो कोई बीमारी नहीं...और फिर रोग इस तरह नहीं बढ़ता। रोग बढ़ता है कमज़ोरी से! जब हमारे शरीर में रोग से लोहा लेने वाले लाल कीटाणु कम हो जाते हैं, तब! 'चूहा सेदनशाह' की बात जानती हो?

मधु : चूहा सेदनशाह...?

वसन्त : शिकार करने के विचार से कुछ अफ़सर चूहा सेदनशाह गये। उनमें अमरीका 'राक-फेलर-ट्रस्ट' के कुछ डाक्टर भी थे। लंच के समय उन्हें पानी की आवश्यकता पड़ी। बैरे ने आकर बताया कि गाँव में कोई कुआँ नहीं, लोग जौहड़ का पानी पीते हैं। डाक्टरों को विश्वास न आया, क्योंकि जौहड़ का पानी मैला-चीकट था। ऐसी कोई ही बीमारी होगी, जिसके कीड़े उस पानी में न हों और चूहा सेदनशाह के जाट हृष्ट-पुष्ट, लम्बे-तड़ंगे...।

मधु : तो क्या आप चाहते हैं, हम जौहड़ का पानी पीना शुरू कर दें?

[हँसती है।]

वसन्त : (उठकर कमरे में घूमता हुआ) तुम इस बार पर अपनी विषाक्त हँसी बिखेर सकती हो (उसके सामने रुककर) लेकिन तुम्हें मालूम हो कि अमरीका के डाक्टर वहीं रहे। एक जाट के रक्त का उन्होंने विश्लेषण किया। मालूम हुआ कि उसमें रोग का

मुकाबिला करने वाले लाल कीटाणु, रोग की मदद करने वाले श्वेत कीटाणुओं से, कहीं अधिक संख्या में हैं। तब उन्होंने वहाँ के लोगों की खुराक का निरीक्षण किया। पता चला कि वे अधिकतर दही और लस्सी का प्रयोग करते हैं और दही में बहुत-सी बीमारियों के कीड़ों को मारने की शक्ति है। बीमारी का मुकाबला इन नज़ाकतों और नफ़ासतों से नहीं होता, बल्कि शरीर में ऐसी शक्ति पैदा करने से होता है, जो रोग के आक्रमण का प्रतिरोध कर सके।

[फिर घूमने लगता है।]

मधु : मैंने चूहा सेदनशाह की बात सुन ली। मैले तौलियों से शरीर में लाल कीड़े फैलें या सफेद, मुझे इससे मतलब नहीं। मैं तो इतना जानती हूँ कि बचपन ही से मुझे सफाई पसन्द है। मामा जी···।

वसन्त : (मेज़ के कोने का ग्राह लेकर) तुमने फिर अपने मामा और मौसा की कथा छेड़ी। माना कि वे विलायत हो आये हैं, किंतु इसका यह मतलब तो नहीं कि जो वे कहते हैं, वह वेद-वाक्य है। उस दिन तुम्हारे मौसा आये थे। उन्होंने हाथ धोये तो मैंने कहीं भूले से तौलिया पेश कर दिया। (मधु के पास आकर) उन्होंने दाँत निपोर दिये (नकल उतारते हुए) 'मैं किसी दूसरे के तौलिये से हाथ नहीं पोंछता'—और वे अपने रुमाल से हाथ पोंछने लगे। मैं पूछता हूँ अगर वे उस तौलिये से हाथ पोंछ लेते तो उन्हें कौन-सी बीमारी चिमट जाती ?

मधु : अब यह तो···

वसन्त : और तुम्हारे मामाजी—(वापस जाकर फिर मेज़ पर बैठ जाता है।) तुम्हारे जाने के बाद एक दिन मैं उनके यहाँ गया। रात वहीं रहा। दूसरे दिन मुझे सीधे दफ़तर आना था। कहने

लगे—'हज़ामत यहीं बना लो।' मैंने कहा—'मैं एक दिन छोड़कर हज़ामत बनाता हूँ, मुझे कोई ऐसी जरूरत नहीं'। जब उन्होंने अनुरोध किया तो मैंने कहा—'अच्छा, बनाये लेता हूँ!' तब वे एक निकृष्ट सा रेज़र ले आये और कहने लगे (नकल उतारते हुए)—'मैं अपने रेज़र से किसी दूसरे को हज़ामत नहीं बनाने देता, इसीलिए मैंने मेहमानों के लिए दूसरा रेज़र रख छोड़ा है'—क्रोध के मारे मेरा रक्त खौल उठा, लेकिन अपने आपको रोककर मैंने केवल इतना कहा—'रहने दीजिए मैं घर जाकर शेव कर लूँगा।'

मधु : मामा जी···

वसन्त : (अपनी बात जारी रखते हुए) इस बात पर शायद उन्हें महसूस हुआ कि मुझे उनकी बात बुरी लगी और उन्होंने मुझे अपने ही रेजर से हज़ामत बनाने पर विवश कर दिया। किन्तु मेरे हज़ामत बनाने पर मेरे ही सामने ब्लेड उन्होंने लान में फेंक दिया और नौकर से कहा कि रेज़र को साफ़[1] कर लाये (नकल उतारते हुए) मामा जी···

मधु : मैं कहती हूँ, आप उनके स्वभाव से परिचित नहीं, आपको बुरा लगा। स्वच्छता और सुरुचि की भावना भी काव्य और कला ही की भाँति···

वसन्त : (आवेग में उस के पास आकर) क्यों काव्य और कला को अपनी इस घृणा में घसीटती हो। तुम्हारे ऐसे वातावरण में पले हुए सब लोगों की सुरुचि में घृणा की भावना काम करती है—शरीर से, गंदगी से, जीवन से—घृणा की!

---

१ उबलते पानी में डाल कर किसी चीज को बीमारी के कीटाणुओं से पाक करना।

मधु : (चुप रहती है।)

वसन्त : और मुझे जीवन से घृणा नहीं। मुझे शरीर से भी घृणा नहीं और मैं सच कह दूँ, मुझे गंदगी से भी घृणा नहीं।

मधु : (हँसती है।) तो फिर कूड़े के ढेरों पर बैठिए!

[वसन्त फिर कुर्सी पर जा बैठता है, और कुर्सी को और समीप ले आता है।]

वसन्त : मुझे गंदगी से घृणा नहीं, किन्तु मैं गंदगी पसन्द नहीं करता— बड़ा सूक्ष्म-सा अन्तर है! यदि हमें जीवन का सामना करना है तो रोज़ गंदगी से दोम्चार होना पड़ेगा। फिर इससे घृणा कैसी? जिन ग़रीबों को तुम अपने बरामदे के फ़र्श पर भी पाँव न रखने दो, मैं उनके पास घंटों बैठ सकता हूँ।

मधु : (केवल हँसती है।)

वसन्त : और मैंने ऐसे गन्दे इलाकों में जीवन के निरंतर कई वर्ष बिताये हैं, जहाँ तुम्हारी सुरुचि की सनक तुम्हे गुज़रने तक न दे। समझीं!

मधु : (वहीं बैठे और वैसे ही स्वेटर बुनते हुए) पर अब तो आप ग़रीब नहीं। अब तो आप गंदे इलाकों में नहीं रहते। ग़रीबी की विवशता को मैं समझ सकती हूँ, किन्तु गन्देपन का स्वभाव मेरी समझ से दूर की चीज़ है।

वसन्त : तो तुम्हारे विचार में मैं स्वभाव से गंदा हूँ।

मधु : (उसी विषैली हँसी के साथ) मैं कब कहती हूँ!

वसन्त : (खड़ा हो जाता है।) ऐसे दिन मुझ पर आये हैं, जब एक बनियाइन पहने मुझे कई-कई दिन गुज़र जाते थे। उसे धोने तक का अवकाश न मिलता था और अब मैं दिन में दो-दो

बार बनियाइन बदल लेता हूँ। यदि यह गंदेपन की आदत है तो···

मधु : (उसी हँसी के साथ) मैं कब कहती हूँ?

वसन्त : स्वच्छता बुरी नहीं, न सुरुचि बुरी है, पर तुम तो हर चीज़ को सनक की हद तक पहुँचा देती हो और सनक से मुझे चिढ़ है। (फिर कमरे में घूमने लगता है।) बनियाइनों और तौलियों की क़ैद मैंने मान ली, किन्तु यदि मैं ग़लती से बनियाइन न बदल पाऊँ, या ग़लत तौलिया ले लूँ तो इसका यह मतलब तो नहीं कि मैं स्वभाव से गंदा हूँ और मेरे इस स्वभाव पर तुम्हें मुँह फुलाकर बैठ जाना या अपनी विषैली हँसी बिखेरनी चाहिए।

मधु : (चुप रहती है।)

वसन्त : (रेडियो के पास से) तुमने अपने आपको इन झूठे बन्धनों में इतना जकड़ लिया है कि मेरा ज़रा-सा खुलापन भी तुम्हें अखरता है। अपने सिद्धान्तों को तुमने सनक की हद तक पहुँचा दिया है। ऊषी और निम्मो···

मधु : (बुनना छोड़ देती है।) आपने फिर ऊषी और निम्मो की बीत चलायी। ऊषी और निम्मो···।

वसन्त : (हँसते हुए) कल मिल गयी बाज़ार में। मैंने पूछा—निम्मो आयी नहीं तुम इतने दिनों से? कहने लगी—हमको चची से डर लगता है।

(हँसता है।)

मधु : (उसी विषैली हँसी के साथ।) मैं, उन्हें खा जो जाती हूँ।

वसन्त : (तिपाई के पास) खाओगी तो तुम क्या, पर वे बच्चियाँ हैं···।

मधु : बच्चियाँ!

(व्यंग्य से मुँह बिचकाती हुई हँसती है।)

वसन्त : (उसके व्यंग्य को सुना-अनसुना करके तिपाई पर बैठते हुए) हँसना उनका स्वभाव है। वे हँसेंगी तो बेबात की बात पर हँसेंगी और तुम्हारी 'सुरुचि' और 'संस्कृति'—बस दबे-दबे घुटे-घुटे फिरो—ऊँह ! (बेज़ारी से सिर हिलाकर उठता है।) जो आदमी जी भर खा-पी नहीं सकता, हँस-हँसा नहीं सकता, वह जीवन में कर ही क्या सकता है। दुख और मुसीबतों के बंधन ही क्या कम हैं जो ज़िन्दगी को शिष्टाचार की बेड़ियों से जकड़ दिया जाये—यह न करो, वह न करो, ऐसे न बोलो, वैसे न बोलो, यों न बैठो वों न बैठो—इन वर्जनाओं का कहीं अन्त भी है ?

मधु : (चुप रहती है।)

वसन्त : और फिर तुम्हारे इस शिष्टाचार में वह स्निग्धता कहाँ है ? तुम्हारे आने से पहले देव और नारायण एक ही लिहाफ़ में बैठ जाते थे। ज़रा कल्पना तो करो—सर्दियों की सुबह या शाम, एक ही चारपाई पर, एक ही रज़ाई घुटनों पर ओढ़े, चार-पाँच मित्र बैठे हैं। गप्पें चल रही हैं। सुख-दुख की बातें हो रही हैं। वहीं चाय आ जाती है। साथ-साथ बातें होती हैं। साथ-साथ चुस्कियाँ लगती हैं—इस कल्पना में कितना आनन्द है ? कितनी स्निग्धता है ? अब मित्र आते हैं। अलग-अलग कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। एक दूसरे पर बोझ मालूम होता है। (जोश से) चिड़िया तक तो फटकने नहीं देतीं तुम बिस्तर के पास। मैं तो इस तकल्लुफ में घुटा जाता हूँ।

[जाकर कुर्सी पर बैठ जाता है और हजामत का सामान ठीक से रखने लगता है।]

मधु : मैं तकल्लुफ स्वयं पसन्द नहीं करती। पर जब दूसरों को सफाई

का कुछ भी खयाल न हो तो विवश हो इससे काम लेना पड़ता है। आप ही बताइये, कितने लोग हैं, जिन्हें सफाई की आदत है? कितने हैं जो हमारी तरह पाँव धोकर रज़ाई में बैठते हैं?

वसन्त : (वहीं से) पांव धोने की मुसीबत रज़ाई में बैठने का लुत्फ ही किरकिरा कर देती है।

मधु : कुत्ता भी बैठता है तो दुम हिलाकर बैठता है। आदमी स्वभाव ही से सफाई-पसन्द है। मुझे गन्दे लोगों से सख्त घृणा है। (फिर स्वेटर बुनने लगती है)

वसन्त : (मुड़कर) घृणा-घृणा-घृणा—यही तो मैं कहता हूँ। तुम्हें मुझसे घृणा है, मेरे स्वभाव से घृणा है, मेरे मित्रों से घृणा है। तुम्हारा वातावरण मेरे वातावरण से घृणा करता है।

मधु : (विषैली हँसी के साथ) यह आप कह सकते हैं।

वसन्त : तुम्हें मेरी हर एक बात से घृणा है—मेरे खाने-पीने से, उठने-बैठने से, हँसने-बोलने से—मैं जब हँसता हूँ, जी खोलकर हँसता हूँ और इसीलिये ऊषी और निम्मी···

मधु : (स्वेटर को फेंककर) आपने फिर ऊषी और निम्मी की बात छेड़ो। मुझे हँसना बुरा नहीं लगता। पर समय-कुसमय का भी ध्यान होना चाहिये। उस दिन पार्टी में आते ही ऊषी ने मेरे कान पर चुटकी ले ली और निम्मी ने मेरी आँखें बन्द कर लीं, कोई समय था उस तरह हँसी-मजाक का! मुझे हँसी-मजाक से घृणा नहीं, बद्तमीजी से घृणा है।

वसन्त : ऊषी···

मधु : परले सिरे की बद्तमीज़ है। मदन की वर्ष-गाँठ के दिन वे सब

आए थे। निम्मी इतनी चञ्चल है, पर वह तो बैठ गयी एक ओर, यह नवाबज़ादी सेंडल समेत आ बैठी मेरे सामने टाँगें पसारे और वे उसके गंदे सेंडल—मेरी साड़ी के बिलकुल समीप आ गये! आप इस बद्तमीजी को शौक से पसन्द करें, मैं तो इसे हरगिज़ पसन्द नहीं कर सकती। जिसे बैठने, उठने, बोलने का सलीका नहीं वह मनुष्य नहीं पशु है।

वसन्त : (गरजकर) पशु! तो तुम मुझे पशु समझती हो? तुम मनुष्य की सहज भावनाओं को निर्मम वर्जनाओं की बेड़ियों में ऐसे बाँधकर रखना चाहती हो कि उसकी रूह ही मर जाये। मुझे यह सब पसन्द नहीं और इसलिये तुम मुझसे घृणा करती हो, तुम्हारी इस विषाक्त हँसी में, मैं जानता हूँ, कितनी घृणा छिपी है और मुझे डर है कि किसी दिन मैं सचमुच पशु न बन जाऊँ। अभी मेरा जी चाहा था कि इस ज़लील से तौलिये को उठाकर बाहर फेंक दूँ और...और...मेरा जी चाहा करता है कि मैं तुम्हारी इस हँसी का गला घोंट दूँ। घृणा—तुम मेरी हर बात से घृणा करती हो—मुझे पशु समझती हो!

मधु : (स्वेटर उठाते हुए भरे हुए गले से) आप नाहक हर बात को अपनी ओर ले जाते हैं। अपनी कल्पना से मेरे मन में वे बातें देखते हैं, जो मैं स्वप्न में भी नहीं सोचती। मुझे आपसे घृणा है या नहीं, इसे मैं ही जानती हूँ, पर आपको मुझसे ज़रूर घृणा है। आपने मुझसे शादी कर ली, मैं जानती हूँ। क्यों कर ली, यह भी जानती हूँ। लेकिन विवाह के लिये आप का तैयार हो जाना, यह नहीं बताता कि आपको मुझसे घृणा नहीं। इसका गुस्सा चाहे अब आप मेरी सुरुचि पर निकालें, या संस्कृति पर, पहनावे पर या स्वभाव पर।

वसन्त : तुम तो...

मधु : मेरा ख़्याल था, मैं आपको सुख पहुँचा सकूँगी। आपके अव्य-वस्थित जीवन को व्यवस्था सिखा दूँगी, किन्तु मैं देखती हूँ कि मेरे सारे प्रयास विफल हैं···आपको इस गंदगी में, इस अव्यवस्था में सुख मिलता है। आपको मेरी व्यवस्था, मेरी सफाई बुरी लगती है। मैं आपकी दुनियाँ में न रहूँगी। मैं आज ही चली जाऊँगी।

(उठ खड़ी होती है—तभी टेलीफोन की घण्टी बजती है, वसन्त जल्दी से जाकर चोंगा उठाता है।)

वसन्त : हैलो, हैलो, जी, जी!

मधु : (नौकरानी को आवाज़ देते हुये) मंगला!

मङ्गला : (स्नानगृह की ओर के दरवाज़े से आती है।) जी बीबी जी?

मधु : मेरा बिस्तर तैयार कर और मेरा ट्रंक इस कमरे में ले आ।

मंगला : बीबी जी आप···

मधु : मैं जो कहती हूँ उठा ला।

(मंगला चली जाती है। वसन्त 'जी, जी बहुत अच्छा!' कहते हुये चोंगा रख देता है और हँसता हुआ आता है।)

वसन्त : मैं कहता हूँ तुम अपना सामान बाँधने की सोच रही हो, पहले मेरा सामान तो ठीक कर दो। मुझे पहली गाड़ी से बनारस जाना है। अभी साहब ने आदेश दिया है। अपना सामान बाद में बाँधना।

(हँसता है—पर्दा तत्काल गिरता है।)

(कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है। कमरा वही है। सामान भी वही है, सिर्फ इतना अन्तर है कि जहाँ मेज़ थी, वहाँ एक पलंग बिछा है। और टेलीफोन उसके सिरहाने एक

तिपाई पर रखा है। मेज़, ड्रेसिंग टेबल की जगह चला गया है। और शृङ्गार की मेज़, अपनी कुर्सी के साथ दायें कोने को सरक गयी है।

पलंग पर मधु लिहाफ़ घुटनों पर लिये दीवार के सहारे अन्यमनस्क सी आधी लेटी है।

कुछ क्षण बाद वह कैलेंडर की ओर देखती है। उसकी दृष्टि का अनुसरण करते ही मालूम होता है कि जनवरी का महीना है और नया साल चढ़ गया है। जिसका मतलब यह है कि मधु को हम दो महीने बाद देख रहे हैं।

बाहर का दरवाज़ा खुला है और तीखी हवा अन्दर आ रही है। लिहाफ़ को कंधों तक खींचते हुए मधु नौकरानी को आवाज़ देती है। 'मंगला, मंगला! लेकिन आवाज इतनी हल्की है कि शायद मंगला तक नहीं जाती। मधु रज़ाई लेकर लेट-सी जाती है। कुछ क्षण बाद मंगला स्वयं ही आती है।)

मंगला : बीबी जी, यह आप उदास-उदास क्यों हैं?

मधु : (लेटे-लेटे ज़रा सिर उठाकर) मंगला यह किवाड़ बन्द कर दे, बर्फ़ सी हवा अन्दर आ रही है।

मंगला : (किवाड़ बन्द करते हुए) मेरी बात का उत्तर नहीं दिया आपने बीबी जी!

मधु : यों ही कुछ तबीयत उदास है मंगला!

मंगला : कोई पत्र आया बाबू जी का?

मधु : आया था। शायद आज-कल में आ जायँ!

मंगला : तो फिर···

मधु : (विषाद से हँसकर) तबीयत कुछ भारी-भारी-सी है। शायद सर्दी के कारण···

(दरवाज़े पर दस्तक होती है।)

मधु : (ज़रा उठकर) कौन ?

सुरो : (बाहर से) दरवाज़ा तो खोलो।

मधु : (बैठकर) मंगला, ज़रा किवाड़ खोलना।

(मंगला दरवाज़ा खोलती है, सुरो और चिन्ती आती हैं।)

मधु : (रज़ाई परे करके) अरे सुरो, चिन्ती, तुम यहाँ कैसे ?

सुरो : आज ही सवेरे यहाँ उतरी हैं।

चिन्ती : माता जी प्रयाग जा रही थीं। सरिता बहिन का ख्याल था कि दिल्ली भी देखते चलें।

मधु : ठहरी कहाँ हो ?

चिन्ती : कनाट प्लेस में मलिक चाचा जी के यहाँ। देर से उनका अनुरोध था कि दिल्ली आयें तो···

मधु : और मुझे पत्र तक नहीं लिखा। इतने दिनों से मैं कह रही थी कि दिल्ली आओ तो···

सुरो : सबसे पहले तुम्हीं से मिलने आये हैं। माता जी कहती थीं कुतुब मीनार···

चिन्ती : मैंने कहा कुतुबमीनार एक तरफ और बहन एक तरफ़···

(मधु ठहाका लगाती है।)

सुरो : और फिर दो घन्टे से मारे-मारे फिर रहे हैं तुम्हारी तलाश में।

मधु ; लेकिन पता तो मेरा···

चिन्ती : सुरो बहिन भूल गयीं। इन्होंने ताँगेवाले को भैरो के मन्दिर चलने के लिये कह दिया।

मधु : (आश्चर्य से) भैरो के मन्दिर···

चिन्ती : और ताँगेवाला ले गया सब्जीमण्डी, कहीं तीस हज़ारी के गिरजे के पास।

मधु : गिरजे के पास···

(ज़ोर से ठहाका लगाती है।)

चिन्ती : (अपनी बात ज़ारी रखते हुए) तब इन्हें ख़याल आया कि मन्दिर तो हनुमान का है। फिर नयी दिल्ली वापस आयीं।

(मधु फिर ज़ोर से हँसती है।)

सुरो : और तब पता चला कि हम लोग तो यों ही परेशान होते रहे। घर तो तुम्हारा पास ही था।

मधु : तुम लोग भी मैं कहती हूँ···

(जोर से हँस पड़ती है।)

सुरो : यह इतना हँसना तुम कहाँ से सीख गयीं। तुम तो थीं जन्म की सिड़ी···

चिन्ती : भाई साहब ने सिखा दिया इतने ज़ोर से ठहाके लगाना! कहाँ हैं वे?

मधु : बनारस गये हुए हैं, दो महीने से। वहाँ की फ़र्म का मैनेजर बीमार पड़ गया था। शायद आज-कल में आ जायँ।

चिन्ती : अच्छे तो हैं?

मधु : अच्छे हैं। मौज में हैं। लेकिन तुम खड़ी क्यों हो। इधर आ जाओ बिस्तर पर। (नौकरानी को आवाज़ देती है) मंगला, मंगला!

(सुरो और चिन्ती कुर्सियों पर बैठने लगती हैं।)

मधु : अरे कुर्सियाँ छोड़ो। बस चली आओ इधर। पलंग पर बैठते हैं लिहाफ़ लेकर।

सुरो : लेकिन मेरे पाँव (हँसकर) और मैं धो नहीं सकती इन्हें।

मधु : अरे क्या हुआ है तुम्हारे पाँवों को। जुराबें तो पहन रखी हैं तुमने?

चिन्ती : पर तुम्हारा बिस्तर?

मधु : कुछ नहीं होता बिस्तर को। मेरे बिस्तर का ध्यान छोड़ो। बस चली आओ इधर। यह किवाड़ बन्द कर दो, बर्फ़ सी हवा अन्दर आ रही है।

(मंगला आती है।)

मंगला : आपने आवाज दी थी बीबी जी?

मधु : मंगला चाय बनाकर लाओ!

(चिन्ती किवाड़ बन्द कर देती है। तीनों घुटनों पर लिहाफ़ लेकर आराम से बिस्तर पर बैठ जाती हैं।)

सुरो : पुष्पा की शादी हो रही है, अगले महीने।

मधु : (चौंक कर खुशी से) लेफ़्टिनेंट वीरेंद्र के साथ?

चिन्ती : (हँसकर) सब तुम्हारे जैसी नहीं। वह प्रेम करती रहेगी वीरेन्द्र से जीवन भर, पर शादी तो उसकी प्रोफेसर मुन्शीराम ही के साथ होगी।

मधु : पर मुन्शी राम···।

सुरो : खड़े का ख़ालसा[1] है भई। लेफ़्टिनेंट साहब तो आते हैं कभी-कभी वर्ष भर में एक-दो बार और प्रोफ़ेसर साहब सिर पर सवार रहते हैं, आठों पहर बुरे साये की तरह।

---

१. पंजाबी मुहाविरा—जो आदमी सिर पर खड़ा रहता है वह काम निकाल लेता है।

चिन्ती : लम्ब-सलम्मा लमढीक सा आदमी, ज़ोर की हवा चले तो उड़ता चला जाये। मैं तो सोचती हूँ कि उसे पुष्पा जैसी मोटी मुटल्ली से प्रेम भी हुआ तो कैसे ?

मधु : और मैं इस बात पर हैरान हूँ कि पुष्पा उसे पसन्द ही कैसे करती है। मैं तो उसे पाँच मिनट के लिए भी सहन न कर सकूँ। चेहरे पर तो उसके नहूसत बरसती है और मालूम होता है जैसे···

चिन्ती : वर्षों स्नान-गृह का मुँह न देखा हो।

सुरो : सहन तो उसे करना ही पड़ता है। उसके पिता प्रोफ़ेसर मुन्शी-राम पर बड़े प्रसन्न हैं। उन्होंने प्रोफ़ेसर साहब को पढ़ाया-लिखाया और अपने कालेज में लगाया। वीरेन्द्र तो चार वर्ष बी० ए० में रहे और प्रोफेसर मुन्शीराम ने रिकार्ड तोड़ा था।

चिन्ती : अब दोनों मिलकर बच्चे पैदा करने का रिकार्ड तोड़ेंगे। (सब हँसती हैं—मंगला चाय की ट्रे लाती है।)

मंगला : कहाँ लगाऊँ चाय बीबी जी ?

मधु : वहाँ मेज़ पर रख दो और एक-एक प्याला बनाकर हमें दो। यह तिपाई सरकाकर इस पर बिस्कुट रख दो।

सुरो : (आश्चर्य से) मधु !

मधु : अरे उठकर कहाँ जाओगी ! यहीं बैठी रहो। इस गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबल पर जाने में आ चुका चाय का मज़ा।

चिन्ती : (उठने का प्रयास करते हुये हल्के से क्रोध से मधु !

मधु : हटाओ भी, अब बैठी रहो यहीं।

चिन्ती : (व्यंग्य से) तो ब्याह के बाद रानी मधुमालती ने अपने सब सिद्धान्त बदल डाले हैं। अब डाइनिंग टेबल के बदले बिस्तर

पर ही चाय पीती हैं और बिस्तर पर ही खाना भी नोश फ़रमाती हैं।

सुरो : कहाँ तो यह कि पानी का गिलास भी पीना हो तो डाइनिंग रूम की ओर भागतीं और कहाँ यह कि···

मधु : अरे क्या रक्खा है इस तकल्लुफ़ में। सच कहो, इस समय किसका जी चाहता है कि इस नर्म-गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबल पर जाये। लो बिस्कुट लो और चाय का प्याला उठाओ! ठंडी हो रही है।

(सब चाय के प्याले उठा लेती हैं और चाय पीते पीते बातें करती हैं।)

सुरो : मैं पूछती हूँ-यदि चाय बिस्तर पर गिर जाय?

मधु : तो क्या हुआ। चादर धुलवाई जा सकती है। और फिर किसी दिन सहसा हो जाने वाली दुर्घटना के भय से कोई अपने रोज़ के सुख-आराम को तो नहीं छोड़ देता।

सुरो : सुख आराम (व्यंग्य से हँसती है) तुम बिस्तर पर चाय पीने को बहुत बड़ा सुख समझती हो···

(फिर हँसती है।)

चिन्ती : और फिर संस्कृति, सुरुचि···

मधु : आदमी की आधारभूत भावनाओं पर नित्य नये दिन चढ़ते चले जाने वाले पर्दों का नाम ही तो संस्कृत है। सोसाइटी के एक वर्ग के लिए दूसरा वर्ग सदैव असभ्य और असंस्कृत रहेगा। फिर कहाँ तक आदमी सभ्यता और संस्कृति के पीछे भागे। और रही सुरुचि, तो यह भी अभिजात वर्ग की स्नाबरी[1] का दूसरा नाम है।

---

१. अपने से छोटों को हेय समझने का स्वभाव।

सुरो : यह तुम क्या कह रही हो ? क्या तुम चाहती हो कि इतना कुछ सीख-समझ कर आदमी फिर पहले की तरह बर्बर बन जाये ?

मधु : नहीं, बर्बर बनने की क्या ज़रूरत है ? आदमी सीमाओं ,को छूता हुआ क्यों चले। मध्य का मार्ग क्यों न अपनाये। न इतना खुले कि बर्बर दिखायी दे, न इतना बँधे कि सनकी—महात्मा बुद्ध ने कहा था······

सुरो : (हँस कर) महात्मा बुद्ध ! तुम्हें हो क्या गया है, सदियों पुराने गले-सड़े विचारों को तुम आज भी सभ्यता पर लादना चाहती हो !

चिन्ती : मनुष्य हर घड़ी, हर पल प्रगति के पथ पर अग्रसर है। आज के सिद्धान्त कल काम न देंगे और कल के परसों। बर्नार्ड शा···

मधु : (व्यंग्य से हँस कर) बर्नार्ड—शा—हटाओ क्या बे-मज़ा बहस ले बैठी हो। मंगला चाय का एक एक कप और बनाओ।

चिन्ती : बस भाई अब तो हम चलेंगे। इतनी देर हो गयी हमें यहाँ आये। मंगला हाथ धुला दो हमारे।

मधु : अरे भाई एक-एक प्याला तो और लो।

सुरो : नहीं मधु, अब चलेंगे। वहाँ सब लोग परेशान हो रहे होंगे। हमने कहा था, हम केवल मधु का घर देखने जा रहे हैं। एक-आध घंटे में लौट आयेंगे और यहाँ आने ही में दो घंटे लग गये।

चिन्ती : बाथ-रूम किधर है ! हम वहीं हाथ धो आते हैं।

मधु : अरे क्या धोओगी इस सर्दी में हाथ ?

सुरो : नहीं भाई, हाथ तो हम ज़रूर धोयेंगे ! चिप-चिप कर रहे हैं।

मधु : तो मरो (मंगला से) मंगला इनके हाथ धुलवा दो।

सुरो : बाथ-रूम···

मधु : अरे बाथ-रूम में जाकर क्या करोगो। इधर बरामदे ही में धो लो।

(किवाड़ खोल कर सुरो और चिन्ती हाथ धोती हैं। मधु चुपचाप अपने प्याले की शेष चाय पीती है।)

सुरो : (गीले हाथ लिये वापस आकर) तौलिया कहाँ है ?

मधु : तौलिया नहीं दे गयी मंगला ? अच्छा वह ले लो जो खूँटी पर टँगा है।

सुरो : (क्रोध से) मधु तुम अच्छी तरह जानती हो···

मधु : मंगला, इन्हें अन्दर से एक धुला हुआ तौलिया ला दो।

(चिन्ती भी गीले हाथ लिये आ जाती है। मंगला तौलिया ले आती है और दोनों हाथ पोंछती हैं।)

मधु : मैं कहती थी, अभी कुछ देर बैठतीं !

चिन्ती : नहीं भई अब कल आने का प्रयास करेंगे।

(हाथ पोंछ कर तौलिया कुर्सी की पीठ पर रख देती है।)

मधु : प्रयास नहीं, ज़रूर आना। भूलना नहीं। और खाना यहीं खाना।

सुरो : हाँ, हाँ, अवश्य आयेंगे।

(मधु उठने का प्रयत्न करती है।)

मधु : अब उठने का तकल्लुफ न करो। बैठी रहो अपने गर्म लिहाफ़ में। दरवाज़ा हम बन्द किये जाते हैं। बर्फ़-सी हवा अन्दर आ रही है।

(हँसती हुई चली जाती हैं, दरवाज़ा बन्द किये जाती हैं ।)

मधु : मुझे एक प्याला और बना दो मंगला ।

मंगला : (प्याला बना कर देते हुए) ये कौन थीं बीबी जी ?

मधु : मेरी सहेलियाँ थीं । कालेज में हम साथ-साथ पढ़ते थे और होस्टल में भी साथ-साथ ही रहते थे ।

(कुछ क्षण मधु चुपचाप चाय पीती है, फिर.)

मधु : मंगला !

मंगला : जी, बीबी जी ।

मधु : मंगला, ज़रा मेरी ओर देख कर बता तो क्या मैं सचमुच बदल गयी हूँ ।

मंगला : (चुप रहती है ।)

मधु : (जैसे अपने आप से) मेरी सहेलियाँ कहती हैं, मैं बदल गयी हूँ । पड़ोसिनें भी यही कहती हैं ! मेरी ओर जरा देख कर बता तो मंगला, क्या मैं वास्तव में बदल सकी हूँ ?

मंगला : मैं तो आठों पहर आपके पास रहती हूँ बीबी जी, मैं क्या जानूँ !

मधु : (अपनी बात जारी रखते हुए) मेरी आँखों में देख कर बता मंगला, क्या ये बदल सकी हैं, इनमें घृणा की झलक तो नहीं ?

मंगला : (आश्चर्य से) घृणा—

मधु : मेरे व्यवहार में तकल्लुफ, और बनावट तो नहीं ?

मंगला : (उसी आश्चर्य से) बनावट, तकल्लुफ़—

मधु : तकल्लुफ़, बनावट, नफ़रत—तीनों को अब मैं अपने मन से निकाल देना चाहती हूँ (जैसे अपने आप से) दो महीने पहले, वे इसी बात पर मुझसे लड़ कर चले गये थे ।

मंगला : क्या कह रही हैं बीबी जी आप ! बाबू जी तो···

मधु : (शून्य में देखते हुए) उनका गुस्सा अभी तक नहीं उतरा । इन दो महीनों में उन्होंने मुझे एक पत्र भी नहीं लिखा ।

मंगला : एक पत्र भी नहीं लिखा, लेकिन···

मधु : (व्यंग्य से) 'मैं कुशल से हूँ, अपनी कुशल का पता देना !' 'या' मैनेजर बीमार है ज्योंही स्वस्थ हुआ चला आऊँगा !' इन्हें तुम पत्र लिखना कहती हो । वे मुझ से नाराज़ हैं । उनका ख़्याल है कि मैं उनको घृणा करती हूँ ।

मंगला : (कुछ भी समझने में असफल होते हुए)—घृणा, घृणा ?

मधु : यदि मैं बचपन ही से ऐसे वातावरण में पली हूँ, जहाँ सफ़ाई और सलीके का बेहद ख़्याल रखा जाता है तो इसमें मेरा क्या दोष है ? (लगभग भरे हुए गले से) सफ़ाई और सुरुचि को मेरी घृणा बताते हैं । मैं बहुतेरा यत्न करती हूँ कि इस सब सफ़ाई-उफ़ाई को छोड़ दूँ, इन तकल्लुफ़ात को तिलांजलि दे दूँ, पर अपने इस प्रयास में कभी-कभी मुझे अपने आप से घृणा होने लगती है । (लम्बी साँस भर कर) बचपन से जो संस्कार मैंने पाये हैं, उनसे मुक्ति पाना मेरे लिए उतना आसान नहीं । (अचानक दृढ़ता से) पर नहीं । मैं अपनी इस सारी सनक को छोड़ दूँगी । पुरानी आदतों से छुटकारा पा लूँगी । वे समझते हैं, मैं उनसे नफ़रत करती हूँ ।

मंगला : आप क्या कह रही हैं बीबी जी ?

मधु : वे समझते हैं—मैं उनसे, उनके स्वभाव से, उनके वातावरण से, उनकी हर बात से एकघृणा करती हूँ । (सिसकने लगती है ।) मैंने इन दो महीनों में अपने आपको बिल्कुल बदल डाला है ।

[दरवाज़ा अचानक खुलता है और वसन्त प्रवेश करता है ।]

वसन्त : हेल्—लो मधु ! क्या हाल-चाल हैं जनाब के ? (मंगला से) मंगला ताँगे से समान उतरवाओ । और (जेब से पैसे निकालते हुए) और यह लो डेढ़ रुपया । ताँगेवाले को दे दो ।

(मंगला पैसे लेकर चली जाती है ।)

वसन्त : (फिर मधु के पास आते हुए) कहो भाई, क्या हाल-चाल है ? यह सूरत कैसी रोनी बना रखी है ! जी कुछ खराब है क्या ?

मधु : (जो इस बीच में पलंग से उतर आयी है—हँसने का प्रयास करते हुए) सूखा जाड़ा पड़ रहा है । जुखाम है मुझे तीन-चार दिन से ।

वसन्त : मैंने तुम से कितनी बार कहा है कि अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो । सेहत-सेहत-सेहत दुनिया में जो कुछ है सेहत है । जीवन में तुम्हारी यह सफ़ाई और सुघड़ता, यह सुरुचि और संस्कृति, ये नज़ाकतें और नफ़ासतें इतना काम न देंगी, जितना सेहत । यदि यही ठीक नहीं रहती तो ये सब किस काम की और जब यह ठीक है तो फिर इनको कोई ज़रूरत नहीं । (अपने कथन की बारीकी का स्वयं ही आनन्द लेता है और फिर जैसे उसने पहली बार कमरे को अच्छी तरह देखा हो) अरे यह कायापलट कैसी ? यह पलंग ड्राइंग रूम में कैसे आ गया । और ट्रे और प्याले···।

मधु : मैंने पलंग इधर ही बिछा दिया है कि आप और आपके मित्रों को ज़रा भी कष्ट न हो । मज़े से लिहाफ़ लेकर बैठिये । टेली-फ़ोन आपके सिरहाने रहेगा ।

वसन्त : (उल्लास से) वाह ! मैं कहता हूँ । तुम···तो, तुम···तो···बेहद अच्छी हो !

(उसे आलिंगन में भर लेता है।)

मधु : मैं स्वयं अपनी सहेलियों के साथ इसी लिहाफ़ में बैठा रहूँ।

वसन्त : (आश्चर्य-मिश्रित उल्लास से उसकी दोनों बाहों को थामे, उसकी आँखों में देखते हुए) सच !

मधु : (उसकी ओर प्रशंसा की इच्छुक प्यार भरी दृष्टि से देखते हुए) और चाय भी हमने यहीं पी है।

वसन्त : (प्रसन्नता से) व···ा···ह ! (उसे छोड़ कमरे में एक चक्कर लगाकर) मैं कहता हूँ–अब तुम ज़िन्दगी का रहस्य समझ पायी हो। सफल जीवन का भेद बाह्य तड़क-भड़क में नहीं, अन्तर की दृढ़ता मे है। यदि हमारी प्रतिरोध-शक्ति क़ायम है··

मधु : चाय भी अब आप यहीं पिया कीजिएगा, अपने नर्म-गर्म बिस्तर पर !

वसन्त : (अत्यधिक उल्लास से) वाह वा वाह ! अब इसी बात पर तुम मंगला से कहो। मेरे लिए चाय का पानी रखे।

मधु : अब तो आप नाराज नहीं हैं ?

वसन्त : (आश्चर्य से) नाराज़ !

मधु : आप इतने दिनों तक मन में गुस्सा रख सकते हैं, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था।

वसन्त : (और भी आश्चर्य से) गुस्सा !

मधु : दो महीने से आपने ढंग से पत्र तक नहीं लिखा।

वसन्त : पर मैंने···

मधु : पत्र लिखे थे···जी ! 'मैं कुशल से हूँ, अपनी कुशल का पता देना'—इसे पत्र लिखना कहते होंगे।

वसन्त : (ज़ोर से ठहाका मारता है) तो तुम इसका कारण यह समझती हो कि मैं तुमसे नाराज़ हूँ ? पगली ! तुमसे भी कभी कोई नाराज़ हो सकता है ?

मधु : पर दो पंक्तियाँ···।

वसन्त : दो पंक्तियाँ लिखने का भी अवकाश मिल गया, तुम इसी को बहुत समझो।

मधु : अच्छा आप जाकर हाथ-मुँह धो लीजिए। मैं चाय तैयार करती हूँ।

वसन्त : मैं कहता हूँ तुम कितनी···तुम कितनी···तुम कितनी अच्छी हो।

(उसे बाहों में भरकर कमरे में एक चक्कर दे देता है।)

मधु : (हँस कर अपने आपको उसके आलिंगन से मुक्त करते हुए) अच्छा-अच्छा चलिए, पहले हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलिए।

मंगला : यह फिर तुमने कपड़े बदलने की पख़ लगायी?

मधु : क्यों कपड़े न बदलिएगा? एक रात और एक दिन गाड़ी में सफ़र करके आये हैं। मार्ग की धूल सारे शरीर पर पड़ी हुई है। चलिए, चलिए, जल्दी हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलिए! मैं इतने में चाय तैयार करती हूँ (वसन्त को स्नानगृह के दरवाज़े की ओर धकेल देती है और नौकरानी को आवाज़ देती है) मंगला, मंगला!

मंगला : (दूसरे दरवाज़े से झाँकती है) जी, बीबी जी!

मधु : सामान रखवा लिया या नहीं!

मंगला : जी, बीबी जी!

मधु : यह ट्रे और प्यालियाँ उठा। पानी तो चाय का ठंडा हो गया होगा। बाबू जी उधर हाथ-मुँह धोने गये हैं। मैं और पानी रखती हूँ। इतने में यह पानी फेंक कर चायदानी और प्यालियाँ अच्छी तरह धो डाल!

(मंगला ट्रे आदि उठाकर जाती है। एक चम्मच गिर जाता है।)

(कुछ तीखे स्वर में) यह चम्मच फिर फ़र्श पर गिरा दिया तूने। बीस बार कहा है कि चम्माच न गिराया कर फ़र्श पर,

चिप-चिप होने लगती है। अब ट्रे बाहर रखकर इस जगह को गीले कपड़े से पोंछ डाल !

वसन्त : (स्नानगृह से) अरे भई साबुन कहाँ है ?

मधु : ध्यान से देखिए ! वहीं तख़्ती पर पड़ा है।

वसन्त : (वहीं से) और तौलिया।

मधु : (हाथ-मुँह धो आइए और इधर कमरे से सूखा नया तौलिया लेकर पोंछ लीजिए।

[मंगला कपड़े का टुकड़ा भिगोकर लाती है और चुपचाप फर्श साफ़ करने लगती है।]

—: तू फ़र्श साफ़ करके चायदानी और प्यालियाँ धो डाल और मैं पानी रखती हूँ चाय का।

[रसोई-घर के दरवाज़े से चली जाती है। कुछ क्षण तक मंगला चुपचाप फ़र्श साफ़ किये जाती है। फिर वसन्त हाथ-मुँह धोकर कुर्ते की आस्तीनें चढ़ाये, गुनगुनाता हुआ आता है।]

हिडोला कैसे झूलूँ, मेरा जिया डोले रे।
मैं झूला कैसे झूलूँ मेरा जिया डोले रे।

[और अपने ध्यान में मग्न कुर्सी की पीठ पर पड़े हुए उस तौलिये से मुँह पोंछने लगता है जिससे सुरो और चिन्ती हाथ-मुँह पोंछकर गयी हैं।]

— : (रसोई-घर से) यह केतली कैसी बना रखी है मंगला तूने ? मनों मैल जमी हुई है पेंदे में (केतली हाथ में लिये आती है।) तुझे कभी बर्तन न साफ़ करने आयेंगे मंगला। कितनी बार कहा कि सफाई का···अचानक वसन्त को सुरो वाले तौलिये से मुँह पोंछते हुए देखकर लगभग चीखते हुए) यह सूखा नया तौलिया लिया है आपने ? मैं पूछती हूँ, आप सूखे और गीले

तौलिये में भी तमीज़ नहीं कर सकते। अभी तो सुरो और चिन्ती चाय पीकर इस तौलिये से हाथ पोंछ कर गयी हैं।

वसन्त : (घबरा कर) पर नया तौलिया···

मधु : नया तौलिया उधर कमरे में टँगा है।

वसन्त : ओह कम्बख़्त तौलिये। मुझे ध्यान ही नहीं रहता। असल में दोनों तौलिये साफ़ हैं, मुझे···

मधु : जी साफ़ हैं। ज़रा आँख खोल कर देखिए! गीले और सूखे···

वसन्त : मैंने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया···(खिसियानी हँसी हँसता है।)

मधु : जी आपकी दुनिया। जाने आप किस दुनिया में रहते हैं। अब तो ऐनक नहीं। ऐनक हो तो कौन सा? आपको कुछ दिखायी देता है। (मुँह फुलाकर धम से कोच में धँस जाती है।)

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह लटका लिया। नाराज हो गयी हो।

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) नहीं मैं नाराज़ नहीं।

वसन्त : (चिल्लाकर) तुम्हारा ख़्याल है, मैं इतना मूर्ख हूँ जो यह भी नहीं पहचान सकता।

[पर्दा सहसा गिर जाता है।]

लक्ष्मीनारायण मिश्र | एक दिन

पात्र

राजनाथ	पिता
मोहन	पुत्र
शीला	पुत्री
निरंजन	पुत्र का मित्र

[देहात के किसी गाँव में खपरैल का मकान। माटी की दीवारें चिकनी कर चूने से लीपी गयी हैं। आगे की ओर काठ के खम्भों पर बना ओसारा। खम्भे काले पड़ गये हैं, उनके रंग से ही उनकी आयु फूट रही है। उनका हीर इतना सूख गया है कि जगह-जगह टेढ़ी-मेढ़ी दरारें पड़ गयी हैं। जाति का गुण और बल और कहीं माना जाय या नहीं, इन खम्भों की लकड़ी में तो ठोस है, ये शीशम के खम्भे अपनी टेक में पत्थर का कान काट रहे हैं। भीतर जाने का पुराना द्वार दायीं ओर से पड़ता है। इससे हटकर तीन नये किवाड़ इस समय के हैं, जो अपनी बनावट, लकड़ी और पल्लों से इस नये युग की बस यही इतनी छाप इस घर पर लगा रहे हैं। इस नये युग का सब काम जब यह पुराना घर न दे सका, तब बैठक के लिये यह एक कमरा बना लिया गया। भीतर की इतनी जगह ले ली गयी। इस कमरे में एक ओर पलंग पर बिछावन बिछा है। नीचे कच्ची धरती पर नयी दरी पड़ी है। दूसरी ओर देहाती बढ़ई की बनाई भोंडी मेज़ के तीन ओर बेंत की तीन कुर्सियाँ और दीवालों पर कुछ नये-पुराने सस्ते चित्र हैं। ऊपर बाँस के फट्टों में कील लगाकर रंगीन चाँदनी लगी है। मेज के पीछे एक किवाड़ दालान में होकर भीतर जाने का है।

भीतर की ओर से राजनाथ का प्रवेश। ऊँचा पुष्ट शरीर। ललाट पर रेखायें। बाल गंगा-जमुनी, भवें तनीं और लम्बी; आँखों में लाल डोरे। साँस कुछ बढ़ी चाल में है। एक कुर्सी खींचकर बीच वाले द्वार के सामने धम्म से

बैठ जाते हैं। तीन बार हथेली से ललाट पीट लेते हैं, फिर हाथ खट्ट से कुर्सी की बाँह पर गिर पड़ता है।]

राजनाथ : चक्रनेमिक्रमेण···चक्र की इस गति को मैंने रोकना चाहा! यह उसी का दण्ड है। बड़े बने रहने के मोह में मैंने पूर्वजों को मर्यादा मिटा दी। आँधी के वेग में एक-एक पत्ते, हर डाल टहनी के साथ, धरती पर जड़ के साथ आ जाना मैंने नहीं चाहा और अब ठूँठ हूँ। मोहन!···मोहन···!

मोहन : जी आया (उसी द्वार से प्रवेश। प्रायः बीस वर्ष की अवस्था का युवक। रेशमी कमीज और उजली धोती। आँख धरती की ओर मुँह पर भय की छाया) जी इसमें थोड़ा···

राजनाथ : कभी नहीं। जो हो गया···जन्म भर उसी में जलता रहूँगा। पाँच पीढ़ी की बात जानता हूँ, अस्सी के नीचे कोई मरा नहीं। मेरे अभी पचपन हैं। उन-सा सुखी नहीं रहा, फिर भी अभी पन्द्रह बरस तो चलेंगे ही।

मोहन : कितनी बड़ी समस्या से पिंड छूटेगा? झूठी मर्यादा? अपनी लड़की का सुख आप नहीं देखते।

राजनाथ : गोली मार दो तुम मुझे। उस सुख से बड़ा सुख मिलेगा मुझे इस में। वंश की मर्यादा तुम्हारे लिए झूठी हो गयी, जिसे बचाने में सब कुछ चला गया! बाप-दादों का घर भी चला गया। जिस घर में पैदा हुआ, खेला-कूदा, बड़ा हुआ···जिसमें तुम्हारी माँ आयी, तुम भी जिसमें जनमे थे, उसके नीलाम डुग्गी से भी प्राण उतना नहीं बिधा था जितना आज बिधा है।

मोहन : सब कहीं हो रहा है···बड़े-से-बड़े घरों में···बिना कन्या देखे विवाह अब बड़े घरों में नहीं होता।

राजनाथ : सो तो तुम कर चुके। विष का घूँट तो मैं पी गया, दूसरा न पीऊँगा।